तृतीय अध्याय

मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श

(1) 'विरूद्ध' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(2) 'पटरंगपुरपुराण' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(3) 'देवी' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(4) 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(5) 'हमको दियो परदेश' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(6) 'अपनी गवाही' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

(7) 'सहेला रे' उपन्यास में स्त्री-विमर्श

प्रस्तावना-

गद्य की सभी विधाओं में जैसे नाटक, कहानी ,आत्मकथा आदि की तरह उपन्यास भी साहित्य का एक अंग है। उपन्यास साहित्य की एक ऐसी विधा है जो बदलते हुए परिवेश में समाज की सच्चाइयों को बड़ी आत्मीयता के साथ अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। स्वतंत्रता के बाद महिला उपन्यासकारों की संख्या में इजाफा हुआ है। स्त्री अपने अस्मिता के प्रति ज्यादा जागरूक हो चुकी है। वर्तमान समय में स्त्री-पुरुष की समानता एवं समान अधिकार पर सहमत होते हुये स्त्री, पुरुष दोनों समानता की बात कर रहे हैं। स्त्री अस्तित्व की खोज मृणाल पाण्डे ने अपने उपन्यासों में बखूबी किया है। वर्तमान समाज में भ्रष्टाचार, स्त्रियों का होने वाला शोषण, बच्चों की दशा आदि समस्याओं को अपने उपन्यास में मृणाल पाण्डे ने स्थान दिया है। मृणाल पाण्डे अन्य महिला रचनाकारों से भिन्न है। इनके उपन्यासों में कल्पना कम बल्कि घटनाएं सर्वे और रिपोर्ट के आधार पर तैयार की गई हैं। घटनाओं में स्त्री जीवन की सजगता ,स्त्री का पारिवारिक जीवन एवं स्त्री की दुनिया का समग्र अंकन देखा जा सकता है। वर्तमान समाज में हो रही घटनाओं, स्त्री के साथ हो रहे दुर्व्यवहार आदि का जिक्र इनके उपन्यासों के केंद्र में है।

अन्य महिला उपन्यासकार एवं मृणाल पांडे-

साहित्य में मनुष्य का व्यक्तित्व ही नहीं बल्कि पूरा पारिवारिक जीवन भी चित्रित होता है। खान-पान, रहन-सहन, धर्म, मर्यादा, संस्कृति, परंपरा का सम्पूर्ण अंकन इनके उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। मनुष्य साहित्य लेखन में भी संवेदनात्मक अस्तित्व की पहचान कर रहा है। मानव जीवन में होने वाली जटिलताओं का अंकन इस उपन्यास में प्रस्तुत है। समकालीन रचनाकार इस बात को बड़ी बारीकी से पेश करते हैं। उपन्यास विधा की सबसे खास विशेषता है कि मनुष्य के जीवन का समग्रता से अंकन एवं उसके व्यक्तित्व की पहचान करना। जीवन के अनछुए दर्दो एवं भावनाओं का अंकन प्रामाणिकता के साथ करना मृणाल पाण्डे के उपन्यासों की एक अन्य विशेषता है। साहित्य कल्पना की दुनिया में लिखा जाता तो है परंतु मनुष्य जीवन की परिस्थितियों से कोई भी रचनाकार अलग नहीं लिख सकता। साहित्यकार जीवन के दर्दों को तथा मनुष्य के अस्तित्व की पहचान को बड़ी ईमानदारी एवं विनम्रता से पेश करता है।

आज महिला उपन्यासकारों की संख्या बढ़ रही है। इनमें अधिकांश लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में अपने जीवन का परिचय दिया है। महिला उपन्यासकारों के क्षेत्र में सबसे पहला नाम उषा देवी मित्रा का नाम आता है। बंग साहित्य की सहजता एवं भावुकता को व्यक्त करने वाली महिला उषा देवी मित्रा हैं। इनकी कृतियां - 'वचन का मोल', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान', 'पथचारी', 'आवाज'- (अप्राप्य) है किंतु बाद में 'सोहनी' नाम से आवाज

का प्रकाशन हुआ। उषा देवी के उपन्यासों में नारी जीवन की कोमलता, भावुकता एवं सभ्यता का अंकन मिलता है ।पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों में कंचन लता सब्बरवाल का नाम आता है। इनकी कृतियां जैसे-'मूकप्रश्न', 'संकल्प', 'मूक तपस्वी', 'नया मोड़' , आदि है। इनके उपन्यासों में हृदय एवं बुद्धि का अच्छा सामजस्य दिखाई देता है ।

हिंदी उपन्यास लेखिकाओं में रजनी पनिकर का नाम महत्वपूर्ण है ।इनके उपन्यास - 'ठोकर', 'पानी की दीवार', प्यासे बादल', 'अपने-अपने दायरे', 'महानगर की मीता' आदि। उपन्यासों के माध्यम से इन्होंने नारी जीवन की क्षमता एवं आत्मविश्वास की ऊर्जा का खाका प्रस्तुत किया है।

उपन्यास लेखन की दुनिया में शशिप्रभा शास्त्री का नाम प्रसिद्ध है। इनके उपन्यासों में-'वीरान रास्ते और झरना', 'नावे', 'सीढ़ियां', 'परछाइयों के पीछे', 'कर्करेखा' विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके उपन्यासों में घर- परिवार और स्त्री मन की सच्ची परछाइयां अंकित की गई हैं। कृष्णा सोबती गद्य विधा के क्षेत्र में एक प्रसिद्ध कथाकार हैं। अपनी पंजाबी तेवर के कारण इनके उपन्यासों में एक विलक्षण प्रतिभा एवं मार्मिकता देखने को मिलती है। इनके मुख्य उपन्यास- 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'समय सरगम', 'सूरजमुखी अंधेरे में' आदि हैं। इनके उपन्यास स्त्री जीवन की समग्र चेतना एवं स्त्री जीवन की समग्र कोमलता को व्यक्त करते हैं।

लोकप्रियता की दुनिया में तथा स्त्री जीवन की समग्र चेतना को अपने अनुभव के दर्दों में पिरोने की कला जो शिवानी के उपन्यासों में मिलती है, वह शायद ही किसी के यहां मिल सके। शिवानी के उपन्यासों में संस्कृति, परंपरा एवं अंचल विशेष की प्रस्तुति देखी जा सकती है। इनके उपन्यास- 'मायापुरी', 'चौदह फेरे', 'कृष्णकली', 'भैरवी', 'किशुनकली', 'गैंडा', 'रथ्या' आदि है। इनके उपन्यासों में पहाड़ी जीवन की स्त्री की परिस्थितियों एवं उसका रहन-सहन तथा जीवन में आने वाली समस्याओं की स्थिति का बड़ी विनम्रता से अंकन किया गया है।

हिंदी की आधुनिक महिला उपन्यासकारों में मन्नू भंडारी का नाम प्रसिद्ध है। इनकी संवेदनशील अनुभव की तस्वीरें एवं साहित्य को प्रस्तुत करने का अपना एक अलग अंदाज है ।इनके उपन्यास साहित्यिक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी हैं। इनके उपन्यासों मेंएक इंच मुस्कान'(राजेंद्र यादव के साथ), 'आपका बंटी', 'महाभोज' आदि हैं । उपन्यासों की दुनिया में उषा प्रियंवदा का भी नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उषा प्रियंवदा ने महानगरीय जीवन की परिस्थितियों एवं दर्द की तस्वीरों का बड़ी ईमानदारी से चित्रण किया है। आज के समय में मनुष्य के काइयाँपन का चित्रण, मानव की कुटिलता आदि इनके उपन्यासों में व्यक्त है। आदमी की उदासी, ऊबन, अकेलापन, घुटन की दुनिया इनके उपन्यासों में व्यक्त है। इनकी कृतियां- 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'अन्तर्वशी', 'शेषयात्रा' आदि हैं।

हिंदी की अन्य महिला रचनाकारों में मेहरून्निसा परवेज, निरुपमा सेवती, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुदगल,चंद्रकांता, कुसुमअंसल, दिनेशनंदिनी डालमिया, गीतांजलि श्री, आदि का नाम महत्वपूर्ण है। इन महिला रचनाकारों के उपन्यासों में स्त्री की वास्तविक स्थिति उसके जीवन से जुड़ी कहानियां एवं समाज की स्थिति का पता चलता है।

इन महिला रचनाकारों में मृणाल पाण्डे का भी नाम महत्वपूर्ण है। मृणाल पाण्डे ने वर्तमान समाज की सच्चाईयों को अपने उपन्यास का केंद्र बनाया है। इनके उपन्यास-'पटरंगपुर पुराण', 'विरुद्ध', 'देवी' 'रास्तों पर भटकते हुए', 'हमको दियो परदेश' आदि महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान कथा परिदृश्य में मृणाल पाण्डे का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इनके लेखन के केंद्र में स्त्री की समस्याएं, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन का वर्णन भी मिलता है। इनके उपन्यासों में प्रमुख पात्र स्त्री ही होती है। स्त्री की अहमियत, समाज में उसकी गरिमा तथा स्त्री अस्तित्व की बुनियाद की बात मृणाल पाण्डे करती हैं। इस प्रकार मृणाल पांडे समकालीन उपन्यासकारों की सूची में महत्वपूर्ण मानी जाती है। इनके यहां स्त्री की त्रासदी, विडंबना, घुटन, दहेज, हत्या, स्त्री- पुरुष के संबंध से जुड़े तमाम मुद्दों का जिक्र मिलता है। मृणाल पाण्डे के उपन्यास नारी जीवन की विसंगतियों के माध्यम से कई प्रश्नों को खुले तौर पर खड़ा करते हैं।

डॉक्टर शीला प्रभा वर्मा कहतीं हैं कि- "नारी जीवन की विसंगतियों के सवाल अभिव्यक्ति के साथ ही कौटुम्बिक एवं ग्रामीण परिवेश का जो हृदयग्राही चित्रांकन मृणाल पाण्डे ने किया है वह अछूता है। अभिव्यक्ति में गहराई लिए कोमल भावनाओं को सहज ही पकड़ पाने की ऐसी शक्ति अन्यत्र विरल है।"[1]

मृणाल पाण्डे ने उपन्यासों के माध्यम से केवल स्त्री के जीवन को ही केंद्र में सीमित नहीं रखा है। उन्होंने घर परिवार की स्थिति, सामाजिक, राजनीतिक ,धार्मिक स्थलों का भी चित्रण किया है। सामाजिक बुराइयों, रूढ़ियों तथा समाज में फैले वाह्य आडंबरों का बड़ी ईमानदारी से पर्दाफाश किया है। तेज-तर्रार लेखन होने के कारण इन्होंने अपनी प्रामाणिकता के तौर पर सर्वे तथा रिपोर्ट को भी बीच-बीच में प्रस्तुत किया है।

'विरुद्ध' उपन्यास में स्त्री- विमर्श -

'विरुद्ध' उपन्यास मृणाल पाण्डे का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, उद्देश्यों के उस कगार को छूता है जहाँ मानवीय जीवन की सच्चाई छुपी हुई है। वैज्ञानिकता के दांव- पेंच पर जी रहा समाज क्या जीवन के मूल्यों का आज के संदर्भ में व्यक्ति का सही मूल्यांकन कर पाएगा? बदलते परिवेश और जीवन की संभावना को साकार करने वाला यह उपन्यास स्त्री जीवन की गहराइयों का वर्णन करता है। स्त्री जीवन की सहजता, सरलता, स्त्री-चेतना, दशा और दिशा की खोज करता है। स्वतंत्रता के बाद मृणाल पांडे ने इस विधा पर जो कलम चलाई उसका प्रमाण 'विरुद्ध' उपन्यास है। स्वतंत्रता के बाद देश

में पंचवर्षीय योजनाएं लागू हुई, सरकार की तरफ से यह वायदे किए गए कि अब सबको समान अधिकार मिलेंगे। शिक्षा और रोजगार के अवसर मिलेंगे। इसके अलावा स्त्रियों के लिए कानून बनेंगे। सदियों से दमित कुंठित नारी को समाज से लेकर राजनीति में भागीदारी करने का अवसर मिलेगा। बाद के समय में स्त्री जीवन में कितना परिवर्तन हुआ उन सब की पड़ताल करने के लिए मृणाल पांडे ने सत्ता और राजनीति के गलियारों के बीच लाभ उठाने वाले लोगों के विरुद्ध विरोध की जो आवाज उठाई है वह भी इस कृति में स्पष्ट है।

लेखिका ने इस उपन्यास में पति-पत्नी के रिश्ते को लेकर मानवीयता का ग्राफ तैयार किया है। यह अत्यंत नया मुद्दा है। समकालीन उपन्यासों में जो संवेदनाएं, समस्याएं स्त्रियों की व्यक्त हुईं हैं वह मृणाल पाण्डे ने अपने उपन्यासों में उठाया है। उपन्यास की नायिका रजनी पढ़ी- लिखी है। उसका विवाह उदय नामक पुरुष के साथ हुआ है। उदय ऊंचे पद पर नौकरी करता है। रजनी हमेशा अपने अस्तित्व की खोज के लिए प्रयासरत है। जीवन में उसके पास सब कुछ है फिर भी वह संतुष्ट नहीं है, वह मां के समान पुराने विचारों वाली नही, केवल मान्यताओं पर टिकने वाली नहीं बनना चाहती और ना ही अपनी बहन के समान दुनिया की नई चकाचौंध को स्वीकार करती है। उसके जीवन में स्त्री जीवन की संवेदना तथा अस्मिता को लेकर द्वंद चलता रहता है। रजनी कान्वेंट स्कूल से शिक्षा प्राप्त की है। उसके पास सभी सुविधाएं भी हैं, फिर भी अपने को पति के साथ व्यवस्थित नहीं कर पाती। वह सोचती है-"आखिर यह सारा आक्रोश भरा आवेग है किसके विरुद्ध? उदय के? अपने? या खुद उन दोनों से परे किसी अलक्षित ताकत

के प्रति, जो की इन मुठभेड़ों के प्रति उसकी सारी वितृष्णा के बावजूद हर रोज दोनों को प्रतिद्वंद्वियों की तरह परस्पर चुनौती देने को आमने- सामने ला खड़ा करती है।"[2]

विरुद्ध उपन्यास में रजनी और उदय दोनों तनाव में रहते हैं। उनका पारिवारिक जीवन कुंठा में ही बीत रहा था। रजनी की मां रजनी को देखने के लिए लालायित रहती है। रजनी स्वतंत्र विचारों वाली है। मां और बेटी के प्रेम कि यह स्पष्टवादिता रिश्तों को मजबूती प्रदान करती है। मां और बेटी के रिश्तों के बीच एक पक्की गांठ है जिसको दोनों बांधे रखना चाहती हैं। उसकी मां अपनी बेटी की बहुत चिंता करती है ।रजनी भी अपने पति की परवाह किए बिना मां के साथ ही ज्यादा वक्त गुजारना चाहती है। उसकी मां कहती है कि-"सोचा था अभी कुछ दिन तो रहेगी ही। साल में तो एक बार तो भेजते हैं ,फिर आते ही से बुला लिया।"[3]

उसकी मां रजनी को अपने पास ही रखना चाहती है। सोचती होगी कि मेरी बेटी के पास इतनी सुविधाएं है कि नहीं। रजनी की बुआ अपने लड़कियों को पढ़ाना नहीं चाहती है लेकिन रजनी उन्हें पढ़ाने के लिए सलाह देती है। उसका विचार है कि यदि वह पढ़ी-लिखी रहेंगी तो वे आत्मनिर्भर रहेगीं। समाज में बोझ न होकर समाज और राष्ट्र के कार्यों में भागीदार हो सकेगीं। इतना ही नहीं अपना जीवन बड़ी सरलता से गुजर-बसर कर सकेगीं। उसकी बुआ पुराने धारणाओं पर चलने वाली औरत हैं, वह यही कहतीं हैं कि-"लड़के-लड़कियों का साथ-साथ कॉलेज में पढ़ना हमें कतई पसंद नहीं। आग-घी का साथ क्या।"[4]

इनके उपन्यासों में परिवेश का अच्छा सामंजस्य मिलता है। परिवेश नही जीवन का आइना है जहां सबकुछ नवीन है ।परिस्थितियों को प्रकट करते हुए जीवन का सारगर्भित चित्र खींचा गया है, जो इस प्रकार है- "सूखी मिट्टी के लाल फैलाव के बीच जगह-जगह नीचे छिपी चट्टानों की काली नोकें दिख रही थी। जाने अंधेरे की वजह से या जंगल की नीरव क्रूरता के कारण, रजनी को लगा जैसे कि उसके चारों तरफ उगे वे छोटे, नाटे और गठीले आकार दरख़्त नहीं बल्कि कुछ जीवंत उपस्थितियां हैं, एक काली हिकारत से दम साधे उसे घूरती हुई। है हिम्मत उसमें कि आगे बढ़ सके। उनके काईदार संशय की दमघोटू चुप्पी के बीच।"[5]

लेखिका ने स्त्री के जीवन के ज्वलंत मुद्दों को उपन्यास का विषय बनाया है। बड़ी पीढ़ी का जिक्र करके माँ-बाप के अनुभवों को प्रमाण के तौर पर पेश किया गया है। रजनी के पापा का कहना था कि - "हर चीज का एक समय होता है। एक मौका, जिसके बिना कोई चीज ठीक से नहीं... मां- पापा के पास जीवन की हर उलझन को निपटाने के लिए एक फार्मूला था, जिसके अनुशासन में बंधकर हर कोई एक सुखी संपन्न गृहस्थ धर्म की मर्यादा बखूबी निबाह ले। बस, इतना भर जरूरी था कि इन गैर जरूरी और बचकानी जिद- भरे प्रयोगों को दूर हटाकर.....।"[6]

एक स्त्री के सोचने- समझने का तरीका पुरुष से अलग होता है। स्त्री जीवन के उद्देश्य एवं यथार्थ को जानने का प्रयास करती है, वह द्वंद में अब नहीं भटकना चाहती है। स्त्री जीवन की कुछ खास बातों को लेकर लेखिका कहतीं हैं कि-"दरअसल तुम्हारे जैसी औरतों के साथ परेशानी यह है कि तुम सोचती बहुत हो पर साथ ही

दिमागी तौर से हो घोर आलसी। बस कुछ और सोचकर जवाब देने का मौका आया तो या तो जमुहाई लेने लगती हो या हिस्टीरियकल हो जाओगी ।"[7]

रजनी आम स्त्रियों की तरह अपनी जिंदगी में पाबन्दियों को लेकर घुटन महसूस करती है। हर जगह कहीं ना कहीं किसी चीज को लेकर पाबंदी है। यह पाबंदी स्त्री के मानसिक विकास को रोकती है। स्वतंत्र होकर रहना, अपनी बात सब से कहने की आजादी तथा मन मुताबिक घूमना स्त्री को मिलना चाहिए। अपनी घुटन भरी सांसो को खींचती हुई वह (रजनी) कहती है कि-"कम से कम कालेज में दो- चार सहेलियों से तो मिल लेते थे, अब तो वो भी बंद है। कभी, बस, खुशामद से भैया ने फिल्म दिखा दी तो बस, वरना पड़े- पड़े झक मारते हैं। भैया की ही मौज है, बस सायकिल उठाई और चल दिए, कोई पूछता भी नही कुछ ।"[8]

पुरुष मानसिकता का अंकन स्त्रियां अपने उपन्यासों में बड़ी सरलता से करतीं हैं। एक औरत जब अपनी भावना से पुरुष का मूल्यांकन करती है तब वह समूचे जीवन के वृत्तांत को एक झटके में कह देती है। वास्तविकता और सच्चाई की परवाह किए बिना मन के भावों को प्रकट कर देती है। स्त्री जब अपनी पैनी दृष्टि से पुरुष को समझती है तब मानवीय जीवन की समस्त प्रवृति को अपने नजरों से समझती है। अपनी बहन बिल्लो के माध्यम से रजनी पुरुष की सोच को इस प्रकार व्यक्त करती है -"बिल्लो का कहना था कि सोमेन्दु को हर औरत में एक सफेद फिरंगिन की तलाश है, और इस हीनग्रन्थि को कतई स्वीकार नहीं कर सकती। बेचारी बिल्लो अपनी बड़ी सी बिंदियों, हथकरघे की घटक, देहाती साड़ियों और चांदी के आदिवासी गहनों के बावजूद वह खुद भी तो छिपने के बजाय वही लगती

थी जो दरअसल थी-निखालिस एंग्लो-इंडियन स्कूलों की एक संभ्रांत नीम अंग्रेजी पैदाइश।"[9]

'विरुद्ध' उपन्यास स्त्री के जीवन को केंद्र बनाकर लिखा गया है। स्त्री की सहज मानसिकता, आत्मीयता तथा स्त्री जीवन के मानदंडों के आधार पर स्त्री के कथा संसार को जीवंत बनाने की कोशिश की गई है। रजनी के माध्यम से मां-बाप के अनुभवों को दिखाने की कोशिश किया गया है। जीवन के हर मोड़ पर घर-परिवार में बड़ों की बातें कितना सार्थक हैं, कितना कल्याणकारी है? इस बात का जिक्र करते हुए लेखिका मृणाल पांडे कहतीं हैं कि-"कैसी अजीब बात है कि अपनी जवानी में जब मां-बाप अपनी निजी जिंदगी की गहराई से जीना चाहते हैं तो बच्चों की उपस्थिति उस तीव्रता को कुंद कर जाती है, और बाद को जब तक वे अपनी जिंदगी के समतल पठार पर पहुंचकर बच्चों के जीवन के उतार-चढ़ाव को बांटने को उत्सुक हो, बच्चे अपने निजी चेतनातंतु उस साझे के दायरे से समेट चुके होते हैं। अजीब बात है, पर इतनी व्यापक होते हुए भी हर बार नए सिरे से दुःख देती है, नहीं।"[10]

स्त्री हमेशा से शोषण का शिकार रही है। सामाजिक शोषण के अलावा राजनीतिक लोग भी अपने वोट बैंक के लिए हमेशा महिलाओं का इस्तेमाल किये हैं। केवल सत्ता हथियाने के उद्देश्य से राजनीति की जाती है। स्त्रियों के लिए अब तक कितनी सहायता या लाभ मिले हैं यह किसी से छुपा नहीं है। स्त्रियों में भी गरीब परिवारों की स्त्रियां ज्यादा शिकार हुईं हैं। दो वक्त की रोटी जिनके नसीब में नहीं ऐसी स्त्रियों ने दिन-रात कम पैसे पर मजूरी करके परिवार को चलाती हैं। इस संदर्भ में 'इदन्नमम' उपन्यास में तुलसी जगेश्वर के वार्तालाप को मैत्रेयी पुष्पा ने

बड़ी स्वच्छता से वर्णन किया है -"अरे हमारी तो बेबसी है ठेकेदार ,हमें पेट के लाने दिन में ही पथरा नहीं तोड़ने पढ़ते, रात में देंह... भी हमें बिना, रौंदे तुम्हारी बिरादरी के लोग पत्थरों को हाथ नहीं लगाने देते। बिटिया का करे, बूढ़ी मताई को, बाप को काम नहीं देता कोई..... और जनी की जात मरद बिराबर काम नहीं कर पाती तो शहद की छत्ता की तरह निचोरत है मालिक लोग..... ।"[11]

स्त्री जीवन के संदर्भ में मृणाल पाण्डे के इस उपन्यास की भाषा नपी- तुली है। घटनाओं को जीवंत बनाने के लिए भाषा को नया रूप दिया गया है। स्त्री की भाषा मनोवैज्ञानिकता से पूर्ण एवं तर्कसंगत होती है। भाषा में स्त्री के घर- परिवार की या अपनी स्वयं की बोलियां भी होतीं है। नारीवाद को समृद्ध करने के लिए स्त्री को जीवन के हर तथ्यों से गुजरना होगा। अतः यह कहा जा सकता है कि-

" यह नारी,
सारे रूपों में नारी है,
ओ मानव!
रहने दो उसको केवल नारी ,
कभी न होगी वह बेचारी।"१२

'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में स्त्री विमर्श-

मृणाल पाण्डे का यह उपन्यास 1983 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक पहाड़ी कस्बे की गाथा प्रस्तुत करता है। कुमायूं, गढ़वाल एक पहाड़ी क्षेत्र है। इसके केंद्र में पटरंगपुर नाम का गांव है। पटरंगपुर पुराण में 11 पीढ़ियों की कथा है। 11 पीढ़ियों में पहाड़ी जीवन में होने वाले परिवर्तन का अंकन

किया गया है। गांव के सभी क्षेत्रों में निरंतर परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन से केवल जीवन शैली ही नहीं बल्कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, स्थितियां भी प्रभावित होती है। सरकारी नीतियों एवं विकास सम्बन्धी मुद्दों के कारण पहाड़ी जीवन समृद्ध एवं विकसित दिखाई देता है।

इस उपन्यास में पहाड़ी जीवन और उसमें हो रहे परिवर्तन को सूचित किया गया है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास की 'कथा पर्व' को 15 पर्वों में विभक्त किया है। इसमें त्रेता युग से मध्य युग तक और अंग्रेजी शासन से लेकर 20वीं शताब्दी तक की सभी परिस्थितियों का बड़ी संजीदगी से चित्र खींचा है। यह सफर स्त्रियों के त्याग, बलिदान ,परिश्रम की महानता की गौरवगाथा को प्रस्तुत करता है। स्त्रियों की यह कथा स्त्री-अस्मिता के बारे में जानकारी का एक जरिया भी है। पहाड़ी अंचल में स्त्रियां किन- किन परिस्थितियों से गुजरती हैं? उनकी क्या-क्या योजनाएं थी? इन सब की विस्तृत जानकारी इस उपन्यास को पढ़ने से मालूम होती है।

मृणाल पाण्डे जी ने उपन्यास को आधुनिक विडंबना के साथ जोड़कर हमारी मौजूदा सामाजिक राजनीतिक और व्यक्तिगत समस्याओं को नया अर्थ दिया है। उपन्यास की मुख्य पात्र 'आमा' है। आमा के मुख से ही यह 11 पीढ़ियों के कथा सुनने को मिलती है। आमा के परिवार के फलने- फूलने से लेकर उजड़ने तक का किस्सा जो सुनने को मिलता है। वह केवल उनके ही परिवार की ही नही बल्कि आज के समय में परिवारों की यही दास्तान हो सकती है। जब हम इस उपन्यास को पढ़ते हैं तब ये किस्से हमें हमारे

समाज के बीते दिनों की याद दिलाते हैं कि शायद यही हाल मेरे हम सब के परिवारों का भी है। पटरंगपुर का किस्सा, दादी, नानी के सुने सुनाये किस्से ,कहानी, और दिलचस्प किस्सों की तरह हमारी स्मृति को ताजा रखती है। उसमें एक संवेदना छोड़ जाती है, तब हम इन घटनाओं के माध्यम से परिवर्तन की राह देखते हैं। पहाड़ी जीवन की गाथा अपनी लोक संस्कृति के साथ अपने आंखों के सामने देखा गया है। इससे जिस संस्कृति की पहचान होती है आमा की जिंदगी उसी संस्कृति को व्यक्त करती है।

'आमा' के खान-दान की कहानी जब मार्मिक भावबोधों, मूल्यों एवं सहजताओं को व्यक्त करती है, तब स्त्री जीवन की दशा सहज ही स्पष्ट हो जाती है। अपने परिवार, समाज और पहाड़ी सभ्यता के लिए वहां की स्त्रियां और परिवार की स्त्रियां, खुद आमा ने कितना संघर्ष किया है? यह देखने योग्य है। आमा ने मर्दों की तरह पहाड़ी अंचल को सुधारने में संघर्ष किया था ,जहां सम्पूर्ण सुविधाएं नहीं मिलती थी। खाने- पीने से लेकर अस्पताल तक की सुविधाएं उपलब्ध न हो ऐसी कठिन विद्रूपदाओं को मृणाल पाण्डे ने अपने कथा का अंश बनाया है।

उपन्यास का पहला पहला पर्व 'आदि पर्व' है। प्रारंभ में आमा ने विष्णुकुटी की स्थिति का वर्णन किया है। मृणाल पाण्डे कहती हैं कि- "विष्णुकुटी की आमां ठहरी इस पटरंगपुर शहर की सबसे पुरानी। किस्सों की खान जैसी ठहरी उनके पास। देवी-देवताओं के किस्से ,पितर- पूर्वजों के किस्से, परी- भूतों के किस्से, सुनते जाओ घंटो को, तब भी अब बस करो, जैसा कहने का मन ही नहीं होने वाला हुआ।

सुनाने वाली भी हुई आमा, कि आंखों के आगे ऐन-मैन सारे योद्धा- वीर आके खड़े जैसे हो जाने वाले हुए। मुनकट्टा भूत, उल्टे पैरों वाली गधेरे-मसान की डाकिनी और बरम-पिशाचों की कहानी कहने वाली हुई आमा, तो बाबा हो औरे बदन के रोम -रोम खड़े जैसे हो जाने वाले हुए। वैसे जरा मनमौजी, जरा झक्की जैसी हुई आमा। वे सभी विष्णुकुटी वाले जरा वैसे ही जैसे ठहरे। मन हुआ तो घण्टों बातों की झड़ी लगा देंगे, मन नहीं हुआ तो मेरी तरफ से तुम क्याप्प?"[13]

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में पति-पत्नी के बीच का संबंध मिलता है। आदि पर्व में रामदज्जी एवं उनकी पत्नी हरमिंदर का जिक्र मिलता है। रामदज्जी ज्योतिष जानते थे जिन्होंने हरमिंदर को बताया था कि यह निःसंतान रहेगी मगर ऐसा नहीं हुआ। कुछ समय बाद हरमिंदर को एक संतान बेटी लक्ष्मी हुई। स्त्री हरमिंदर के बारे में आमा बताती थी कि वह बड़ी सहनशील और आज्ञाकारी थी। पति को कभी भी मुंह उलटकर जवाब नहीं दिया। हरमिंदर के जीवन की कथा स्त्री के जीवन की वह कथा है जहां स्त्री अपने आप जीविका तथा जीवन जीने की उम्मीदों में अपने आप को अनुकूल बना लेती है। हरमिंदर के जीवन की कहानी का एक अंश इस उपन्यास में जो मिलता है वह चौकाने वाला ही है। पहाड़ी अंचल में स्त्री जीवन की ऐसी कथा स्त्री- विमर्श की दृष्टि से एक नई पहल है। आमा बताती थीं कि- "सुना, वही कहीं एक खस जात की औरत थी जिसने रामदज्जी को पूजा के लिए झरने के किनारे बैठा देख लिया था। औरत झरने में नहा रही थी। सुना ठगी रह गयी उनका रूप देखकर। माया - विद्या की गजब जानकार ठहरी वह! चट्ट घर जाकर कौवे की

जीभ, कबूतर के पंख और उड़ती चिड़िया की आंख से, सुना, उसने एक और एक गजब का जंतर बनाया, उसे सात रात मसान में साधा, खून में शोधा, कुंवारी लड़की से गुँथवाया, कनफड़ा साधुओं की धूनी से 7 बार छुलाया, और तब जो घुमा के श्याट्ट करके ताल के ऊपर उछाला तो लोग कहते हैं कि सीधा अग्निबाण जैसा सनसनाता हुआ वो मंतर रामदज्जी के मरमस्थल पर जाकर लगा, जैसे लंका में लक्ष्मण को शक्ति लगी थी।"[14]

पहाड़ी औरतों की इस कथा से ज्ञात होता है कि पहाड़ों में रहने वाली स्त्रियां जादू-टोना भी जानतीं थी। तंत्र-मंत्र की विद्या उस समय में स्त्रियों को प्राप्त थी। अपने मंत्रों का उपयोग कर वह किसी को अपने अनुकूल बना सकतीं थीं। इस उपन्यास में बाल-विवाह का वर्णन मिलता है। लक्ष्मी की कथा कुछ ऐसी ही थी। लक्ष्मी की शादी 8 वर्ष की उम्र में जल्दी ही हो गई थी। 14 साल की उम्र में उसको पहली संतान लड़की पैदा हुई। आमा बताती थी कि लक्ष्मी आमा की सास हुई और बहुत ही तिरिया चरित्रों की खान।

पहाड़ी जीवन में जहां लड़कियों की शादी कम उम्र में हो जाया करती थी। शिक्षा का अभाव था ऐसे माहौल में स्त्रियां कैसे आगे बढ़ सकतीं थीं? पटरंगपुरियों की यह दशा मृणाल पाण्डे जी ने अपने उपन्यास में दिखाया है। मृणाल जी ने समाज में फैले आडंबरों को भी स्त्री समस्या के जरिए दिखाया है। स्त्रियों के ऊपर देवी-देवताओं की सवारी होना, झाड़-फूंक करना, आदि बातें सहज ही देखने को मिल जाती हैं। इससे केवल समाज और स्त्रियां ही प्रभावित नहीं हुई बल्कि संपूर्ण परिवेश प्रभावित होता है। इसका उदाहरण उपन्यास के इस अंश में मिलता है- "तो जिस

बरस लछिमी पर देवी आई, उसी बरस सुना, पटरंगपुर में जाड़ों में विचित्र- विचित्र बातें हुई! पहले तो सुना खूब अंधड़- तूफान आए, फिर सुना, सुबह से पानी की झड़ी लगी, तो दोपहर तक मुट्ठी बरोबर ओले गिरने लगे। वो, भी सुना गुलाबी रंग के हुए जैसे फेरी वाला घंटी बजाकर बुढ़िया के बाल की मिठाई बेचता है।"[15]

पहाड़ी सभ्यता में शिक्षा के अभाव के कारण कोई नौकरी नहीं पाता था लेकिन स्त्रियों ने इस परंपरा में परिवर्तन किया। सर्वप्रथम लक्ष्मी का लड़का हरिया को नौकरी मिली। लक्ष्मी ने पढ़ा-लिखा कर उसे योग्य बनाया था। लक्ष्मी का हरिया फौज का एक नायक बना। पटरंगपुर में हुसैन खां दुकड़िया ने हमला कर दिया था तब वहां की स्त्रियों ने ही सर्वप्रथम बचाव के लिए प्रयास किया था, मर्दो को बाद में पता चला। उपन्यास में मुस्लिम आक्रमण की भी चर्चा की गई है। यह मुस्लिम आक्रांताओं का आना पटरंगपुरियों के लिए एक विपत्ति का सूचक था। औरतों के लिए यह उलझन पैदा करने वाला था ,जबकि पुरुषों के लिए केवल मजाक बन गया था। पुरुषों में चर्चा थी कि ऐसा-वैसा नहीं टुकड़िया है टुकड़िया। टुकड़िया बिगड़ गया तो टुकड़े-टुकड़े करके चील- कौओं को डाल जाएगा। स्त्रियों ने टुकड़िया की सेना का सामना करने का प्रबंध पहले ही कर लिया था जिसका उदाहरण उपन्यास के इस अंश से मिलता है- "सुना सबसे पहले औरतें जागी। पहले दिया बालकर उन्होंने भंडारों में घड़ों-पिटारों में रखे अनाज का अंदाजा किया, फिर जाकर मोहरों के घड़े, गहनों के भरे पानदान अपने-अपने आंगनों में दाड़िम और अखरोट के पेड़ों के नीचे दबा आई। फिर बच्चों के और अपने जरूरी सामान थैलियों में धर कर उन्हें

घघरी की पाटों में छुपाया, तब जो जाकर घर के मर्दों की नींद तोड़ी, 'हहो' ये टुकड़िया किसी भी क्षण आ सकता है..... मरद उठे, और जैसी मर्दों की आदत है तुरंत हल्ला रे गुल्ला रे। औरी जो झनकारा-पिनकारा! 'हवे', भाऊ की इजा! तलवार निकालो मेरी, ढाल की सफाई करो, पगड़ी लाओ, जूते लाओ, बल्लम कहां है? कटार कहां है? चलो- चलो राजा का नमक चुकाने अपने-अपने घर का नाज और सोना लेकर।"[16]

उसके बाद से पटरंगपुर में और कोई आक्रमण न हुआ। हां एक रोहिल्ला सरदार नजीर खां ने आक्रमण की कोशिश की थी मगर वो बुरी तरह हार के भागा। पहाड़ी औरतों की वीरता और साहस के बल पर पटरंगपुर में सब सुख- शांति, अमन-चैन से जीवन व्यतीत कर रहे थे। नजीर खां ने अपने दरबार में जाकर कहा था कि पहाड़ की क्या पूछते हो? वहां तो तीन हाथ के आदमी चार हाथ की तलवार चलाते हैं। यह उपन्यास का 'राज पर्व' था जिसमें राजाओं के आक्रमण तथा उनसे प्रभावित पहाड़ी लोगों की जीवन गाथा का चित्रण है ।

पटरंगपुर पुराण उपन्यास में सांस्कृतिक पहलू जीवन के विभिन्न भावों को व्यक्त करता है। पहाड़, जंगल के पेड़, खान-पान, रीति-रिवाज, देव-पूजा तथा पहाड़ी अंचल की लोक संस्कृति उपन्यास में लगाव पैदा करती है। पहाड़ी अंचल से लेखिका को लगाव भी था। उनका परिवार उसी अंचल में विकसित हुआ था। पहाड़ी औरतों का किस्सा बड़े गौरव एवं शालीनता से मृणाल जी ने छोटे-छोटे किस्सों की तरह बताया है। पहाड़ी स्त्रियों का धर्म, व्रत और देवताओं पर बहुत विश्वास था। जंगल की संस्कृति में पले बढ़े लोग प्रकृति

को देवता मानते हैं, कभी नुकसान नहीं पहुंचाते थे। पटरंगपुर में जब यह हल्ला मचा कि गणनाथ के मंदिर में जो तीन अशर्फियाँ चढ़ाई गई थी। वो फिसल के नीचे गिर गई ।ऐसा लगता है कि देवताओं ने चढ़ावा नामंजूर कर दिया तब स्त्रियों का मानना था कि कुछ नया होने वाला है। स्त्री भगवती ने जो भी भविष्यवाणी की थी वो तो बिल्कुल सही हुई ।गोरखों के पतन का श्राप भगवती ने ही दिया था। आमा ने बताया कि कैसे-कैसे ब्रह्मास्त्र चले ? ,कुछ लोग तो ऐसा ही कहते थे कि जंगल के ऊपर आकाशवाणी जैसी हुई और उजाला-उजाला जैसा हो गया जंगल के ऊपर। सुबह नौ बजे तक तोपें छूटती रहीं और सच ही भगवती की भविष्यवाणी सच हुई।

औरतों का गृहस्थ जीवन कितना कठिन होता है। मृणाल पाण्डे ने अपने जीवन के अनुभवों एवं पीढ़ियों के किस्सों के आधार पर सीधी- सीधी टिप्पणी किया है। अपने परिवार में ही रोटी- पानी की व्यवस्था बच्चों, तथा पति का ध्यान स्त्रियों को ही रखना पड़ता है, साथ ही अपनी संस्कृति की मर्यादा को भी निभाना पड़ता है। मृणाल पांडे ने आमा के बहाने स्त्रियों के जीवन का सीधा-सीधा वर्णन किया है- "सास के मरने के बाद घर में औरत रहना जरूरी भी ठहरा, आदमियों के रोटी-पानी का सवाल हुआ, फिर बाद में चनिका हो गए ठहरे अंधे, उन्हें कैसे त्याज्य देती? आहा अपंग, अपाहिज क्रोधी-सबको निभाने वाली हुई तब की औरतें! दिन भर-घर का काम ठहरा, सुबह शुक्रतारा उगने तक उठ जाना हुआ। सुना कई-कई तो ऐसे दंपति लोग भी थे जिनके बच्चे -हच्चे सब हो गए, पर अपने दूल्हा या बहू की शक्ल

भी ठीक से नहीं देखी ठहरी उनने कभी ।जमाने ठहरे वह भी। जमाने ठहरे यह भी।"[17]

पटरंगपुर में जब टामियों का आगमन हुआ तब स्त्रियों के लिए बड़ी समस्या हुई, यहां तक कि स्त्रियों का घर से निकलना मुश्किल हो गया। स्त्री समस्या के केंद्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास 'स्त्री जीवन की त्रासदी' को व्यक्त करता है। उपन्यास का यह अंश स्त्रियों की पीड़ा को व्यक्त करता है कि किस तरह इसी समाज में रहकर उनको अपनी सभी आकांक्षाओं को बलिदान करना पड़ा? उपन्यास के इस अंश में मिलता है कि- "औरतों पर भूखे बाघ जैसे झपटने वाले हुए टॉमी। उनके डर से पानी भरने के नौले सुनसान हो गए, औरतों का शनीचर-मंगल मंदिर जाना छूट गया, बढ़ती उम्र की लड़कियों का छत पर बाल सुखाना बंद हो गया। पर गरीब घरों की छोटी जात वालों के वहां की बेचारी कुटुम्बी औरतों का बाहर निकले बिना कैसे निबाह होता?..... इष्ट का जाप करके बेचारियाँ अपने हँसिए-रस्सी संभाल के निकलने वाली हुई। टामियों के बूटों की खड़ाप्प - खड़ाप्प सुनी नहीं कि थरथर काँपती, जिसे जहां ठौर मिले, छुप जाने वाली हुई ,कोई पानी की टंकी के नीचे, कोई पत्थर के ढोंके के पीछे।"[18]

इस उपन्यास में पटरंगपुर के पाण्डे लोगों के जीवन का चित्रण मिलता है। खासकर उन घरानों की स्त्रियों का, जो खाने-पीने से लेकर गृहस्ती तक के समस्त कार्यों में दक्ष थी। सौ-दोसौ लोगों को खाना बनाना हो तो मिनटों में तैयार कर दें। सिलाई, कढ़ाई, बुनाई करना हो तो सबसे आगे हैं, कोई

सलाह लेना हो तो उपाय बताने में माहिर हैं। घर-परिवार में संस्कृति का पालन करना हो तो कोई उनसे सीखे। उपन्यास के अंतिम पड़ाव पर दो स्त्रियों की और कथा मिलती है। यह दोनों स्त्रियां सामाजिक चेतना का प्रतीक है, समाज का खुलकर विरोध किया, जरूरत पड़ी तो लोगों को ललकारा भी। समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है? स्त्रियां क्या नहीं कर सकती? इन सबके मार्मिक पक्षों को इस उपन्यास में दिखाया गया है। स्त्री जीवन की समस्याओं को स्त्रियां किस हद तक हल कर सकतीं हैं?, इसके माध्यम से समाज में उनका क्या योगदान है? यह 'तितुली कैजा' पर्व से तितुली कैजा की कथा में मिलता है। उपन्यास में यह अंश तितुली के चरित्र की इस प्रकार व्याख्या करता है- "बाल-विधवा ठहरी तितुली कैजा, ऐसे टोने-टोटके बहुत जानने वाली हुई वे। बच्चे के पेट में मरोड़ हो या दूध नहीं पीवै या कि दूध पिलाने वाली मां की बगल में गिल्टी पड़ जाए, या किसी की गाय-भैंस का बच्चा भीतर अटक जाए, तो सब तितुली कैजा को पुकारने वाले हुए, ओ कैजा, जल्दी आ। करके। झट सब ठौर पहुंच ही जाने वाली हुई तितुली कैजा। जीभ की कर्कशा हुई वैसे, पर हाथों में जस ठहरा जस।"[19]

स्त्री पुष्पा के पुत्री की कथा स्त्री-अस्मिता का परिचायक है। अपने ही समाज में स्त्रियों का कितना शोषण होता है, स्त्री उसे कब तक सहन कर पाएगी? या एक झटके में रिश्ते को तोड़ कर अपना जीवन अलग जी लेगी, पुष्पा की पुत्री का चरित्र इसी कथा को व्यक्त करता है। मर्दों की एक भी बात पुष्पा की पुत्री सहन नहीं करती, उसे अपने अधिकारों की पूरी जानकारी है। समय

आने पर उसने अपने हक के लिए अदालत का भी दरवाजा खटखटाया और अपनी रक्षा की। इस संदर्भ में शिवानी का कहना है कि- "स्त्रियों को विधाता ने बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि दी है, कौन पति अपने गृह का स्वामी है? और कौन अपनी पत्नी के शासन के डोर से जकड़ा क्लीव है? वे एक क्षण में पता लगा लेती हैं।"[20]

पुष्पा की पुत्री सामाजिक बुराइयों को दूर करना चाहती थी। समाज में व्याप्त पुरुष मानसिकता को रास्ता दिखाना चाहती थी ,जहाँ से स्त्रियों को बाहर निकलने की नई पहचान मिल सके। झूठे वादों कट्टर मानसिकता, छल-छद्मों एवं स्त्री की समस्याओं को हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहती थी। जैसा कि इस उपन्यास में मिलता है- "वे बेचारी जब दुख असह्य हो गया तो छय रोग से या पेचिस-हेचिस से घुलकर खत्म हो जाने वाली हुई। लड़की ब्याह में देते वक्त तभी तो घाव लगी गाय जैसी हुलफ के रोने वाली हुई माएं। बाप की दहलीज पार की तो बरबस ही हो जाने वाली ठहरी लड़की की जात उन दिनों। आजकल तो पढ़ लिखकर सब की खाप खुल गई है। हिरुआ डॉक्टर की भांजी पुष्पा की लड़की ने सुना, दिल्ली में अदालत में दरखास्त दे के भरी कचहरी में कह दिया कि 'मेरा पति नपुंसक है', मुझे तलाक चाहिए करके।..... पुष्पा ही कह रही थी कि उसने कहा कि 'मैं सारी जिंदगी मुंह में सीमेंट लगाकर क्यों काटूँ ।"[21]

भाषा- उपन्यास में मृणाल पांडे जी ने स्त्रियों की सामान्य भाषा का प्रयोग किया है, साथ ही साथ अंचल विशेष के शब्दों का भी इस्तेमाल किया है। उपन्यास को रुचिकर बनाने के लिए जरूरत पड़ने पर कहावतों का प्रयोग

किया है जैसे-चारा खा गए तीतर चकोर, फंदे में पड़ा मूर्ख चूहा। ,ना काला बामण गोरा शूद्र, इन्हें देखकर कापै रूद्र।

उपन्यास में तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ देसी शब्दों का तथा अंचल विशेष के शब्दों का भी भरपूर प्रयोग मिलता है जैसे - पाटिया, बामण, डरैवर, मझिला, मुकुट। अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है जैसे- हैंडल।

उपन्यास में कूट शब्दों का प्रयोग मिलता है। उपन्यास विधा में यह नया प्रयोग है ।शायद ही किसी उपन्यासकार ने ऐसा प्रयोग किया हो। जैसे व्रत-पंद (उपनयन), मालाकोट (ननिहाल), पिठ्या (शगुन), बूबू (बड़ी बुआ), भाड़ूँ (पतीले), खाप (मुँह)। अंग्रेजी परिवेश, अंग्रेजी सभ्यता, अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से उपन्यास में एक नया भाव तथा पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भी दिखाई देता है।

- **'देवी' उपन्यास में स्त्री- विमर्श -**

1999 के लगभग प्रकाशित 'देवी' उपन्यास स्त्रियों के जीवन की कथा को व्यक्त करता है। देवियों के माध्यम से स्त्रियों की कथा कही गयी है। यह उपन्यास 'समयातीत स्त्रियों की गाथा' का दस्तावेज है। यह एक अनुदित उपन्यास है। इसका अनुवाद मधु.बी. जोशी ने किया है। देवियों की कथा को आधार बनाकर प्राचीन काल से लेकर अब तक की स्त्री जीवन की विसंगतियों का मापन किया गया है। जीवन के दर्दों,आकांक्षाओं, कुढ़न, घुटन एवं स्त्रियों के महत्व को उन्हीं के कराहते दर्दों की भाषा में खुलकर बयां किया गया है। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों पर इतना डटकर लेखन किसी लेखक/ लेखिका ने नहीं किया। मृणाल पांडे ने पहली

बार स्त्री-विमर्श की संभावना को मजबूती देते हुए देवियों की कथा को आधार बनाकर क्रांतिकारी विचारों की लेखनी से स्त्री- विमर्श का नया इतिहास लिखा है। सुमन राजे ने तो हिंदी साहित्य का आधा इतिहास लिखा मगर मृणाल पांडे ने स्त्रियों की जीवन शैली, परंपरा, संस्कृति, खान-पान शारीरिक, मानसिक सभी प्रवृतियों, को ग्रहण करके रिपोर्ताज शैली में यह महागाथा लिखी।

यह उपन्यास न मनोवैज्ञानिक है, न ऐतिहासिक, न सामाजिक, बल्कि रिपोर्ट की शैली में लिखा गया देवियों(स्त्रीयों)पर आधारित है। जीवन के सभी समभाव इसमें उपस्थित हैं। इस उपन्यास के प्रारंभ में ही मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "कश्मीर और उत्तराखंड से लेकर कन्याकुमारी तक और पश्चिम में हिमांचल से लेकर सुदूर उत्तर-पूर्वी राज्यों तक आर्य संस्कृति के आगमन से भी पहले से शक्ति के रूप में देवी की उपासना हमारे यहां निरंतर होती आई है। और हमारी बूढ़ी आमा की ही तरह लाखों-करोड़ों स्त्रियों का दृढ़ विश्वास रहा है कि इस मर्त्य लोक में अच्छा- बुरा जो भी उनके परिवार के साथ घटता है उसकी नियन्ता और कोई नहीं, देवियाँ ही हैं। इन औरतों की उपासना- परिधि में ब्रम्हा, विष्णु, महेश की वृहत्रयी और उनके अनेकानेक अवतार तथा सहायक देवता बेदखल किए गए हो, ऐसा तो नहीं। लेकिन औरतों की पूजा और दैनिक जीवन में घर के मर्दो की ही तरह पितृतुल्य देवगण कुछ अधिक गंभीर, कुछ ज्यादा ही कड़े कायदे- कानूनों में निबद्ध और तटस्थ होकर विराजते हैं।"[22]

उपन्यास को आमा (अपनी नानी) को आधार बनाकर देवी तुल्य उनके मुख वचनों से ही बताने का प्रयास मृणाल पाण्डे ने किया है। किस्सागोई अंदाज में कहा गया यह उपन्यास देवी स्तुति के साथ शुरू होता है। शक्ति की अनेक रूपों से लेकर आर्षकालीन समाज के स्त्रियों की लोककथाओं, महा गाथाओं, छोटी-छोटी कहानियों, वृतांतों का ऐसा प्रमाण है जिसे सहज ही स्वीकार कर लिया गया है। प्रारम्भ में तीन देवियों की गाथाओं का उल्लेख किया गया है-महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती। आमा को इसी रूप में देखने का प्रयास मृणाल पांडे ने किया है। आमा जब शिक्षा ग्रहण करती हुई सादगी, शांत मुद्रा में होती हैं तब तक सरस्वती के रूप में हैं। जब विश्वविद्यालय में अध्यापन करती है, धन संपन्न है, तब महालक्ष्मी के रूप में दिखाई देती है। जब वृद्ध हो जाती हैं, थोड़ा-सा गुस्सा करती है इस रूप में वह महाकाली के रूप में जान पड़ती हैं। स्त्रियों का देवियों के पहले ही उसी रुप में अवतार माना गया है इसलिए उन्हें देवी कहा जाने लगा था।

देवियों के साथ-साथ षोडस मातृकाओं की भी चर्चा की गई है। इन मातृकाओं का पूजन नवजात शिशु के आगमन पर होता था। बालक को हंसाता देख दादियां कहती थी कि- देखो कैसे देवियां बालक को खिला रही हैं। बालक के अनमोल होने के कारण ऐसी कल्पना की जाती थी। बालिकाओं का क्या? उनकी ओर तो देवियां ध्यान भी नहीं देती तभी झपाझप सिसृण (घास) की झाप खरपतवार जैसी बढ़ जाने वाली हुई लड़कियां ।मृणाल पांडे ने देवियों के साथ- साथ सामाजिक स्त्रियों का चित्र खींचा है। हमारे यहां जो मान्यताएं है, जो रीति-रिवाज हैं उन सबको मानना तथा संस्कृति के हर पहलू को स्वीकार करना हमारे धर्म ग्रंथों में स्वीकार्य है। अतः पुरुषों

ने वैदिक काल से स्त्रियों को अधिकारों से वंचित करने की कोशिश की मगर स्त्रियां अपने कर्तव्यों एवं विश्वसनीयता के बल पर अपने जीवन का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया। मृणाल पाण्डे लिखतीं हैं कि- "पुरुषों ने युगों- युगों से जो अपनी बेटियों के साथ किया वही तो वे देवियों के साथ ही करेंगे न! मेरा बाल मन कहता जो भी हो यह यकीन मुझमें हमेशा रहता कि चाम्मड़े दुबले चेहरे वाली कुरूप खष्टी देवी से लेकर भारी कूल्हों और स्तनों वाली ये यक्षिणियों तक ये समस्त देवियां और उप देवियां कहीं खास तौर से मेरा ध्यान रखती होगीं। मैं भी तो उनकी तरह पहाड़ की लड़की हूं न! जो भी लड़ाई- भिड़ाई द्वंद्व- विजय उन्हें करनीं हो, कहीं बीच में मेरी मां की तरह पसीना पोंछती एक नजर वे जरूर मुझ पर फेकती होंगीं, खीझलाई, पर प्यार से भरी हुई- अब क्या करो इसका? हुई तो अपनी ही ना, कहकर!"[23]

कई वर्षो से जो देवियों की वंदना का जिक्र मिलता है उसके आधार पर तो देवियों ने जग का कल्याण ही किया, मगर जब देवियों के ऊपर राक्षसों का आक्रमण हुआ तब देवताओं ने बहुत कम अवसरों पर उनकी रक्षा की। स्वयं देवियों ने शक्ति का अवतार बनकर अपनी रक्षा स्वयं की। हमारे समाज में होश संभालने के बाद बहुत सी लड़कियों को अपने अधिकारों, कर्तव्यों का पूरा ज्ञान भी नहीं हो पाता। शिक्षा के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उनको कितनी आजादी मिलती है? यह देखा जा सकता है। मृणाल पाण्डे ने औरतों को अधिकार तथा जीवन के दुरूह कष्टों से निकलने का रास्ता भी बताया है। मृणाल पाण्डे का कहना है कि- "हममें से अधिसंख्य लड़कियां जब से होश सभालतीं हैं, अपने को औरतों से ही घिरा पाती हैं। ये वे औरतें हैं जिनमें से अधिकतर के पास कोई अधिकार, कोई

स्वतंत्र व्यक्तित्व या स्वतंत्र नजरिया नहीं होता। लड़कों के विपरीत वयःसन्धि की बेला में हमें अपने आगे रखने को स्त्रियों में अपना कोई सकारात्मक मॉडल नहीं दिखाई देता। हाँ, नकारात्मक कहिए तो ढेरों मिल जाएंगे! इसी के साथ यह अहसास निरंतर हमें होता रहता है कि हमारे न चाहते हुए भी कई सामाजिक दबाव बड़े नामालूम ढंग से धकियाकर हमें अहर्निश चपटा, दब्बू, कातर और मौन बनाने में जुटे हुए हैं। हर कहीं उच्च शिक्षा की गंभीर दुनिया से हमें काटा जा रहा है ।(बहुत पढ़ कर क्या करोगी ?), रोटी ही तो बेलना है, दाल ही तो उबालना है? वर ढूढ़ना कठिन होता है बहुत पक्की पौड़ी के लिए)। होते- होते हम में से अधिकतर लड़कियां समाज स्वीकृत, महिला बनने की प्रक्रिया में अपने उलझे-उलझे पर जायज विचारों को भी सुलझाकर बिना खींचें, बिना शरमाए स्पष्ट तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता से हाथ धो बैठती है। फिर कहा जाता है, ये कमअक्ल हैं।"[24]

देवियों की तरह शक्ति को पहचानने वाली स्त्री जिन्हें पितृसत्तात्मक समाज ने सदियों से गुमराह किया। इस संसार में स्त्री की तरह हमारी सभ्यताएं, संस्कृतियां, आदि पहचान के रूप में है। वैदिक युग से देवियों की पूजा होती रही है। स्त्रियों ने शक्तियों की उपासना करके देवियों से शक्तियां प्राप्त की । सदैव अपने आप को सामाजिक कल्याण में प्रस्तुत करने वाली स्त्री हमारे समाज में ही हंसी का पात्र क्यों बन जाती हैं ? मृणाल पांडे ने स्त्री की शक्ति, उर्जा और कार्यक्षमता के आधार पर देवियों की तरह संघर्षशील एवं लोककल्याणकारी बताया है। स्त्रियों ने अपने आचरण एवं स्पष्ट वादिता के बल पर कुंठित, दमित जीवन को अपनी मर्यादा, संस्कृति के अनुसार ढ़ालने की कोशिश की। सामाजिक अंकन का चित्रण

करते हुए मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "जिस समाज में स्त्रियों के लिए जब मन चाहे ढेला- गुलेल उठाकर पेड़ों पर धमाधम चढ़ना, चाय की दुकान पर घंटों उन्मुक्त ठहाकों के बीच जमकर अड्डेबाजी करना, खुली नदी में मन होने पर मन भरकर नहाना जैसे सहज काम, एक आकर्षक ,पर अकल्पनीय स्वप्नमात्र बना दिए गए हों, वहां उनका सामूहिक रुप से बाल खोले, त्रिशूल, वीणा, पुस्तक, खप्पड़ या मदिरापात्र हाथ में लिए लालजिहवा वाली, रक्तदन्तिका, ठठाकर हंसने या गला फाड़कर हुंकार करने वाली देवियों के माध्यम से अपनी गुप्त इच्छाओं को तर्कसंगत ही नहीं पूज्य बनाकर उनका सार्वजनिक समारोह करना नितांत तर्कसंगत ही तो ठहरता है।"[25]

लेखिका का मानना है कि स्त्रियों को दुनियादारी छोड़कर, छल-प्रपंचों से दूर होकर स्वयं अपना चरित्र निर्माण करना चाहिए। जिस प्रकार हमारी देवियाँ स्वयं शक्तिस्वरुपा थी, उसी प्रकार स्त्रियों को अपने जीवन का मार्ग निश्चित करना चाहिए। धर्म, राजनीति के बंधनों से मुक्त मानवता के रिश्ते को तवज्जो देना चाहिए। हमारी देवियां किसी पर निर्भर नहीं थी, स्वयं गुणों की खान थी और हमेशा लोक कल्याण करने वालों का साथ दिया। इसके विपरीत जिसने भी मर्यादा धर्म और स्त्री की अस्मिता को कलंकित करने की कोशिश की उसे दंडित किया। स्त्रियां अपने छमता शक्ति को पहचाने। सदियों से संताप सहती स्त्री को अब ठिठक जाना चाहिए। नई विचारधारा, नए पैमाने की तर्ज पर स्त्रियों को सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में अपना बहुमूल्य योगदान देना चाहिए। अब औरत घरों में रोने वाली योगिनी नहीं, उसे तो अब सभी अधिकार मिलने चाहिए इसलिए मानवीय

भावों की पहचान करते हुए आगे आना चाहिए। स्त्रियों के जीवन को ध्यान में रख कर मृणाल पांडे कहती हैं कि- "बंद दरवाजों के पीछे औरतें, चुपचाप रोती औरतें, अनंत राहों पर जंगल-पर्वतों के बीच यात्रा करती औरतें, ठठाकर हंसती औरतें, औरतें जिन पर देवी 'सवार' हैं। उन सबकी गाथाएँ बाँचना सदियों से महाश्मशान में फैली अपनी अनेक पीढ़ियों के फूल बिनना है। महाकाली नवदुर्गा के लोक में प्रवेश करना है जहाँ स्त्रियां पागल घड़ियों की तरह टिकटिकाती हुई अपने काल का अलग से सृजन करती हैं।"[26]

लेखिका ने स्त्रियों के माध्यम से पुरुषों पर व्यंग्य साधा है। जिस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में रहकर पुरुष स्त्री पर संपूर्ण अधिकार जमाता है, उसे पैरों की धूल समझता है, आखिर में पुरुषों ने भी कभी देवियों को आश्वस्त करने की कोशिश की होगी। पुरुष भी देवियों के भक्त है और वे उनसे अपनी रक्षा कल्याण चाहते हैं। हमेशा पुरुषों के कल्याण के लिए देवियों ने अपने उग्र रूप को त्यागकर पुत्रवत्सला मां के रूप में उनके पास आयीं । चूकी देवियां पुरुषोंको पुत्र समझती हैं। अतः पुरुषों ने इसका लाभ उठाकर वे स्वयं देवियों के पुत्र बन जाना चाहते हैं और देवियों को मां कहकर पुकारने लगे। साथ ही पुत्र बनने का एक मिथक भी गढ़ लिया है। माँ तो हमेशा संतान का कल्याण करती है इसलिए देवियां अपने शक्ति तेज को पहचानने के बावजूद भी पुरुषों के लिए क्षमाशील एवं कल्याण की देवी बनी रही।

उपन्यास में लेखिका ने कई देवियों का जिक्र किया है ।तीन मुख्य देवियों के अलावा नंदा देवी, युयुत्सु देवी, भू देवी आदि का जिक्र मिलता है ।जो समाज एक तरफ़ देवियों की पूजा करता है वहीं दूसरी ओर स्त्रियों को दंडित करता है।

कटुता एवं क्षोभ की जिंदगी जीने वाली स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करता है। लेखिका ने बीच-बीच में कई राज्यों की स्त्रियों के साथ हुए अपमान को इंगित किया है। देवियों की कथा के माध्यम से वंचित नारी के हृदय में छुपी वेदना को ढूढ़ने का काम मृणाल पांडे ने किया है। घोर अपराधों को अंजाम देने वाला यह समाज स्त्री के साथ कितना न्याय करता है? इस दृष्टि से स्त्रियों के दर्द की झांकी खोलने का प्रयास इस प्रसंग के माध्यम से लेखिका ने किया है जो इस प्रकार है- "1990 से ही संभावित रूप से रजस्वला स्त्रियों की इस चिर ब्रहमचारी देवता के मंदिर में प्रवेश का मामला, केरल में उत्तेजक बहसों का विषय रहा है। इससे पहले निचली अदालत ने युवतियों और किशोरियों के प्रवेश पर प्रतिबंध बरकरार रख था और देवस्थान में सुरक्षा कर्मियों को तैनात किया था ताकि दस से 50 के आयु वर्ग से बाहर होने का प्रमाण प्रस्तुत न कर पाने वाली स्त्रियों को बाहर ही रोक लिया जाए।"[27]

समाज में सदियों से देवियों के बहुत साधक हुए हैं जिसमें डाकू, गड़िकाएं, ज्योतिषी और तांत्रिक आदि है। इसके अलावा डायन, अघोरी, सभी देवियों की ओर ऐसे खिचते रहें हैं जैसे-बछड़ा अपनी मां के थनों की ओर। मृणाल पाण्डे लोक प्रसिद्ध देवियों के नाम गिनाती हैं, जिनमें वामा-गणित में गणना की जो वामा पद्धति है उसमें अंक सीधे सरल ढंग से जुड़ने-गुड़ित होने के बजाय तिर्यक ऊपर- नीचे दाएं - बाएं आते जाते हैं और बहुत तेजी से गुड़ित होते हैं। उल्का देवी-जो सौंदर्य की भयंकर पूर्णता को धारण करने वाली। भ्रामरी देवी-मधुर और उन्मत्त कर देने वाली पुष्प गंध से मदमस्त रानी मधुमक्खी मकरंद पान करके सृष्टि का परागण करती मडराती रहती है। स्त्री जीवन की दशा एवं संवेदना को व्यक्त करने के लिए लेखिका

ने सती की कथा का सहारा लिया है। सती किस प्रकार अपने ही मां-बाप, भाई, बहन से पराई हो गई। इतना ही तो किया था कि अपने पति का वरण किया था। राजा दक्ष की बेटी सती ने अपने पिता-परिवार की इच्छा के विरुद्ध जोगी वैरागी शिव का वरण कर लिया था ।सती जब अपने पिता दक्ष के घर आतीं है तो उनसे कोई बात नहीं करता। दक्ष ने बेटी का सत्कार करने को तो दूर, भरी सभा में बेटी तथा उसके पति के बारे में अपमानजनक बातें कहीं। आज भी हमारे समाज में जो स्त्रियाँ इस तरह अपने परिवार के विरुद्ध जाकर शादियां करती हैं कुटुम्ब उनका साथ छोड़ देता है। उनके ऊपर फब्तियाँ कसीं जातीं है, आज भले ही समाज शिक्षित हो गया है। महिला आरक्षण सुविधाओं की बात होती है मगर स्त्री अपने मर्जी के अनुसार शादी नहीं कर सकती। उसपर परंपरा संस्कृति, के बंधन दिखाए जाते हैं, आज से कई वर्ष पूर्व देवी सती ने अपने पिता के खिलाफ यह कदम उठाया था। राजसत्ता का विरोध करना एक स्त्री के लिए चुनौतीपूर्ण था। मृणाल पाण्डे सती के जीवन का मूल्यांकन करती हुई कहतीं हैं कि-"मुझे पूरा यकीन था कि देवी ही जानतीं हैं कि लड़की होना कैसा होता है। अपने संगी- साथियों के कारण अपमानित होना, अपनी बहनों से अलग होने की हिम्मत दिखाने पर जिन लोगों पर हम भरोसा रखते हैं, जिन्हें प्यार करते हैं, वही जब हमें अपने दायरे से बाहर निकाल खड़ा करते हैं, तो कैसा लगता है। एक लड़की को कोई जाने-न जाने, देवी जरुर यह जानती होगी।"[28]

प्राचीन समय से ही देवियों और स्त्रियों ने जिस पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर किया वह इतिहास में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। सती शब्द को आज उन स्त्रियों का उदाहरण माना गया जो अपने प्रेम के कारण

पति के साथ चिता पर बैठ गयी। आज भी ऐसे तमाम बड़े घरानों के पुरुष अपनी बहुओं, अपने पूर्वजों के द्वारा बनवाए गए सतियों के मंदिरों की यात्रा करने को भेजते हैं। पुरुषों के दम्भी प्रवृति पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उनकी तटस्थ मानसिकता एवं दिखावे को समाज के सामने रखने का प्रयास लेखिका ने किया है। समाज में स्त्रियां आज दहेज हत्या के कारण कितना भयभीत हैं । दो टके की राजनीति करने वाले लोग भी स्त्री- विमर्श की बात स्त्री संदर्भ में जब करते हैं तब उनकी मानसिकता स्त्रियों के पक्ष में नहीं होती। क्योंकि उनके कार्य स्त्री संवेदना के जरिए नहीं किए जाते बल्कि सहायता और सौहार्द की भेंट माने जाते हैं। इस संदर्भ में मधु कॉकरिया ने अपने उपन्यास 'सलाम आखिरी' में लिखा है कि- "भारतीय संस्कृति में जहां' यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते'... कहा जाता है वहां उसी नारी को कुछ भीषण कारणों से अपने तन को बेचने के लिए तैयार होना पड़ता है,यह व्यवस्था की सबसे बड़ी क्रूरता है।"[29]

हमारे समाज में सती के उदाहरण स्वरूप जो स्त्रियां हैं वो आज समाज में इन्ही लोक- लाज, परंपरा, मर्यादा में, घुटन में जी रही है। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण समाज अपनी पहचान बदल रहा है। यहां स्त्री अधिकारों की बात नहीं होती बल्कि उसके स्थान पर स्त्री के चरित्र का आकलन किया जाता है। मृणाल पाण्डे इसका जवाब देती हुई कहतीं हैं कि- "लोग उन औरतों को भी 'सती माता' कहने लगे जिनके बारे में हमें मालूम है कि अक्सर तो उन्हें नशे में बेहोश करके, खींचकर पति की चिता पर चढ़ा दिया जाता था ताकि परिवार को एक जवान विधवा की निगरानी न करनी पड़े। उन दिनों को याद करके जब आप किसी स्त्री से कहें

कि 'जल मर' और वह मर जाती थी, सती-पूजकों का लहू आज भी गर्मा जाता है। 'तुम पश्चिमी शिक्षा पायी शहराती औरतें हमारी प्राचीन परंपरा के बारे में कुछ भी नहीं जानतीं, केसरिया पाग वाले मंत्री हम पर चिल्लाते हैं।"[30]

देवी उपन्यास में लेखिका ने सांसारिक स्त्रियों के साथ अपने परिवार एवं रिश्तेदारों की कथा को आधार बनाया है जैसे- नंदी मौसी की कथा, ललिता की कथा, बड़ी अम्मा की कथा आदि। इसके अलावा कई राज्यों के स्त्रियों की समस्याओं का ताजा चित्र प्रस्तुत किया है। रिपोर्ट को सामने प्रस्तुत कर के उपन्यास के मार्मिक प्रसंगों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पिछड़े जिलों राज्यों एवं गरीबी के कारण जीवन यापन करने वाली स्त्रियों की दशा को दिखाया गया है। वेश्याओं की समस्या को ध्यान में रखते हुए 1995 की एक रिपोर्ट को पेश किया गया है। स्त्री विमर्श के संदर्भ में एक नया खाका प्रस्तुत करता है जो इस प्रकार है- "1995 विजयवाड़ा चिलकलुरी पेटा, निजामाबाद ,काकिनाडा और हुस्नाबाद जैसे दूर-दूर फैले जिलों से लड़कियां घसीटकर चकलों में लाई जा रही हैं। भागने की कोशिश कर रही एक लड़की को दलाल पकड़ लेते हैं और उसके चेहरे पर तेजाब डाल देते हैं। चकलों पर दिन रात मुच्छड़ मुस्टंडों का पहरा रहता है। पुलिस से बचने के लिए एक नया ढंग ढूढ़ लिया गया है। लड़कियाँ ज्यादा दिन तक एक शहर के चकले में नहीं रखी जातीं, उन्हें लगातार इधर-उधर किया जाता रहता है। प्रमुख तेलुगु दैनिक उदय लिखता है कि-चकलेदारों और उनके दलालों की राक्षसी सेना ने ढेरों दौलत जमा कर ली है, जिसका इस्तेमाल वे नई लड़कियों को फसाने के लिए करते हैं।"[31]

पुरानी परंपरा या रूढ़ियाँ हमारे जीवन में सच का कितना' यथार्थवादी आइना' प्रस्तुत करतीं हैं। इस विषय को तोलने का प्रयास लेखिका ने स्त्रियों के आधार पर किया है। सरस्वती पहली देवी है जिनका नाम एक नदी के नाम पर है या यह भी हो सकता है कि नदी का नाम देवियों के नाम के अनुसार खा गया हो। लेखिका कहतीं हैं कि-हमारी मां की एक बूढ़ी ताई कहतीं थीं कि बेटियों को कभी नदी का नाम नहीं देना चाहिए, नदी के नाम वाली बेटी, मां-बाप और मायके से हमेशा बिछड़ी रहेंगीं । यही हाल गंगा मौसी का हुआ था। गंगा मौसी का बाद में नाम ललिता हो गया था। ललिता ने शिक्षा ग्रहण किया और घर-परिवार छोड़कर नौकरी भी की । सचमुच पुरानी बातें सच हो गई यह एक बड़ा वृतांत है जो सामाजिक कहावतों का सच उगलता है। घर परिवार में रहकर संताने मां- बाप से कितना लगाव रखतीं हैं। पिता अपनी संतान की कितनी देखभाल करता है लेकिन जब संतान चलना सीख जाती है और अपनी दुनिया अलग बसा लेती है तब माँ-बाप कैसे जियें। मृणाल जी ने ललिता की कथा के माध्यम से ललिता के दादा के दर्द को ब्यक्त किया है। ललिता दादा का संबल बन गई थी। दादा जब उसके पिता के लिए पत्र लिखवाते थे तब उनका विद्रोह खुलकर सामने आता था। मृणाल पांडे के अनुसार- "एक बूढा पिता मकर राशि की जातक उसकी विद्रोहिणी बेटी के माध्यम से अपने बेटे से खेल रहा था। दादा जानते थे कि उनकी बेटी अपने पिता से नफरत करती है और प्यार भी। ठीक जैसे वे स्वयं करते थे, अपने बेटे से प्यार और नफरत साथ- साथ। और ठीक उनकी ही तरह वह भी पीड़ा और स्मृति के जकड़े

दरवाजों को भड़ाक से खोलकर जो भी सामने आ जाए उसका पलक झपकाए बिना सामना करने का साहस रखती थी।"[32]

देवियों की कहानियों एवं बृत्तांतो के माध्यम से स्त्री की कड़वाहट को व्यक्त करने का प्रयास लेखिका ने किया है। यह कहानियां नहीं बल्कि हथियार है। स्त्री-विमर्श की बात करने वाले गोताखोरों के लिए प्रमाण है। शायद वे इन कथाओं को पढ़ पाते। मृणाल पांडे कहती हैं कि- "ऐसी कहानियां किसी औरत ने भगवान जाने कितनी सदी पहले और गढ़ी। आज भी ये कहानियां उतनी ही जीवंत है। धर्म की असह्य रूढ़ियां सांसों की दमनकारिता की अवश्यंभाविता और दोनों से विद्रोह करने की बहू की सहज मानवीय इच्छा ज्यादातर भारतीय औरतों के लिए कुछ भी नहीं बदला है। मेरी मां की पीढ़ी की औरतें यह कहानी सुनकर शायद हँसती और बहू की चतुराई और दमन के विरुद्ध अपनी पहल और देवी को सफलतापूर्वक चुनौती देने को गांव से छिपाए रखने में उसकी सुशीलता की तारीफ करतीं है।स्त्री- सुलभ चतुराई, हंसी- मजाक और सुशीलता को हथियार बनाकर एक अन्यायी तंत्र के बीच बचे रहने में खुद को बहू से जुड़ा पाती। पर मेरी पीढ़ी की कई और मेरी की पीढ़ी की ज्यादातर स्त्रियां शायद उसे विद्रोहिणी नही पितृसत्तात्मक तंत्र के बोझ तले कुचली एक तेजस्वी स्त्री का उदाहरण मानें। उनके लिए देवी का सास को भस्म कर देने के बजाय बहू की करनी पर हैरत जाहिर करना धर्म के स्त्रियों के दुश्मन होने का ठोस प्रमाण है। तब भी जब एक देवी ही अधिष्ठात्री हो।"[33]

माओं, दादियों एवं नारियों के किस्से भले ही लोगों को पहले की तरह सरल-सुलभ महसूस हो रहे हो, लेकिन उनकी सच्चाईयों के तहखाने में जाने पर अंधेरा ही दिखाई देगा। उनकी दुनिया कितनी अजीब थी। कैसे जी रही थी वह इन कष्टों को झेल कर? जब न किसी अस्पताल में आने- जाने के लिए साधन, न तकनीकी का विकास, तब वे कैसे अपने जीवन को होम कर अपने आप को संघर्षों से उभारा? इस संदर्भ में प्रभा खेतान कहतीं हैं कि- "औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर, बाथरूम साफ करते हुए, या फिर सारे ऐश्वर्य भोग के बावजूद मेरी सासू जी की तरह पलंग पर रात भर अकेले करवटें बदलते हुए, हाड़- मांस की बनी औरतें अपने तरीके से जिंदगी जीने की कोशिश में छटपटाती रहती हैं। हजारों- सालों से इनके आंसू बहते आ रहे हैं।"[34]

स्त्री जीवन की सच्चाई में कल्पना का कोई महत्व नहीं है। अपने संसार को कोई स्त्री किसी को बताना नहीं चाहती। जानने वाले भला क्या करेंगे? स्त्री स्वयं समर्थ होना चाहती है। पश्चिमी सभ्यता के फैशनबाजी के आतंक ने आज स्त्रियों को स्वतंत्र होना तो सिखाया है लेकिन उन्हें संस्कृतियों से दूर कर रहा है। चाइनीज फूडों को खाने वाली, पिज्जा-बर्गर का आनंद लेने वाली, आजादी का राग अलाप रहीं हैं लेकिन भारती संस्कृति की दृष्टि से क्या परिवार- समाज को उतना स्वीकार है? पश्चिम के नारी- विमर्श के बाद दुनिया की स्त्रियों में जो विमर्श चलाने का तूफान जगा है, वह स्त्री- अस्मिता के सपनों के लिए कितना कारगर सिद्ध होगा किसी ने इस पर मंथन किया? इस संदर्भ में लेखिका गीतांजलि श्री कहतीं हैं कि- "पुरुष सत्ता का प्रतिपक्ष रचती यह नई औरत न तो पश्चिमी फ़ेमनिज्म का

अनुसरण करती है और न ही वह नारीवाद के किसी स्वीकृत सांचे में ढ़लतीं हैं.....ऐसी स्त्री नहीं।"[35]

मिथकों, सुनी- सुनाई कहानियों का उदाहरण देकर स्त्रीत्व के पैमाने को एक हद तक सही कहा जा सकता है। स्त्री जीवन की गहराई कहां तक छुपी है? स्त्री का जीवन क्या इन्हीं किस्से- कहानियों तक उलझा हुआ है? मानवता के धरातल पर स्त्रीत्व का मार्ग जीवन की सच्चाईयों की तरह आज खुला है या मर्यादा से ढका है?, इन बिंबों को घेरने का प्रयास लेखिका ने अपने उपन्यास में किया है। उपन्यास के अंत में प्रातः 'स्मरणीयाएं' के परिप्रेक्ष्य में अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती, मंदोदरी को आधार बनाकर स्त्री जीवन की पड़ताल की गई है। मृणाल पांडे कहती हैं कि- जो किससे मां- नानी ने सुनाए या हमने स्त्रियों की पौराणिक कथाएं पढ़ी उनको कैसे भुलाया जा सकता है? इस विषय पर उनकी टिप्पणी है कि - "जिन्होंने माँओं और दादी-नानियों की मंदिर की मूर्तियों के सामने रोते- हंसते, उनसे बतियाते नहीं देखा है, जिन्होंने बचपन में देवी के रूप में भेंट पूजा नहीं पाई है, उनके जीवनों में शायद देवी के साथ ऐसे बहनापे के लिए जगह नहीं बची है। आधुनिक भारतीय स्त्री के जीवन का यह सूनापन हमारे समय को प्रतिबिंबित करता है। हमारी स्मृति और कल्पनाशीलता तात्कालिक राजनीति को लेकर इतना व्यस्त रहती है कि साहित्य और दंत कथाओं को हमने भुला ही दिया है। ऐसी कथाओं और मिथकों को भुलाकर हम खुद को एक अनन्य इतिहास-स्त्रोत से वंचित करते हैं।"[36]

भाषा में रूखापन होने के साथ-साथ स्त्री जीवन की सूक्ष्म मानसिकता का पक्ष झलकता है। कभी-कभी लेखिका का तेवर बदल गया है। उन्होंने स्त्रीत्व की पहचान के लिए स्त्री की सहानुभूति एवं सहनशीलता को सराहा है। हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी शब्दों के साथ-साथ लोक कहावतों एवं दंत कथाओं को भाषा की पहचान के लिए उसे उसी सांचे में ढालने का प्रयास किया है। अंत में मृणाल जी स्त्रियों की स्थिति का जायजा लेते हुए स्वागत भरे शब्दों में इस प्रकार लिखती हैं की- "स्वागत है आपका इस खोए फटे हाल संसार में जहां देवियां, कन्याओं, वेश्याओं, फेरीबालियों, भिखारियों और परिवार की कंगाल मुखिया बनकर स्वतंत्र विचरण करती घूम रहीं हैं। यहां भोजन का हर दुर्लभ ग्रास पवित्र है और नमक का एक कण भी बर्बाद करना पाप है। यहां तो आप सुबह उठकर नीम से मुंह साफ करिए और पुरुष फॉरेस्ट ऑफिसर को सलाम करिए जिसकी अनुमति के बिना आप नीम की टहनी तक नहीं तोड़ सकते।"[37]

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में स्त्री विमर्श -

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में स्त्री जीवन की सभी परिस्थितियां दृष्टिगोचर होती हैं। स्त्री जीवन की दशा और दिशा को केंद्र में रखकर यह उपन्यास लिखा गया है। सामाजिक मुश्किलों, भ्रष्टाचार , छल- कपट की राजनीति का पर्दाफाश करने का प्रयास मृणाल पांडे ने इस उपन्यास में किया है।पूरी स्त्री दशा को नायिका मंजरी के माध्यम से व्यक्त किया है। मंजरी जो सामाजिक विचारों को सहर्ष स्वीकार भी करती है लेकिन जब सामाजिक बुराइयां, उल्टे नियम कानून

बाधक बनते हैं तब वह उनको कटुता की राजनीति समझ कर अपने जीवन से अलग कर देती है। समाज में जीवन जी रही हर स्त्री के लिए सामाजिक बंधन कितने स्वीकार हैं? यह सब जानते हैं ।आज अगर किसी स्त्री से पूछा जाए कि आपको कोई समस्या या पारिवारिक प्रताड़ना तो नहीं तो हमारे ही समाज में रहने वाली ज्यादातर स्त्रियां रट्टू तोता की तरह जवाब देंगी कि हमको कोई समस्या नहीं, लेकिन उनकी जिंदगी के हर पहलू का निरीक्षण किया जाए तो उनके पास बहुत समस्याएं हैं। आखिर क्या कारण है कि स्त्री अपनी सभी बातें सामाजिक तौर पर सार्वजनिक नहीं करना चाहती? इसका सीधा- सीधा उत्तर कोई देने को तैयार नहीं है।

सामाजिक भाव बोध को व्यक्त करता हुआ यह उपन्यास स्त्री जीवन की प्रत्येक कड़ी को सद्भाव एवं सहृदयता से जोड़ता है। सामाजिक मनोवृतियों का खाका जितनी सहजता से मृणाल पांडे ने खींचा है वह आज भी स्त्री- विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि स्त्री भी समाज का एक अंग है इसलिए सामाजिक समस्याओं के घेरे में वह भी आएगी। 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "जल संस्थान, जलमल-व्ययन संस्थान, टेलीफोन निगम, रेलवे स्टेशन, बैंक, सार्वजनिक निर्माण विभाग, जहां कहीं रोड़ी-रेता गारे-सीमेंट की नई दुनिया लाल डोरा गांवों की जमीन से जुड़ती थी वहां बाबू दलाल पुलिस की कोई न कोई डाइट घड़ी जचगी कराने के लिए मौजूद रहती थी, वहाँ बाबू, दलाल, पुलिस की कोई न कोई दाई-तिकड़ी जचगी कराने के लिए मौजूद रहती। अपने आप में इन सब की शक्लें शायद कतई विस्मरणीय होती, लेकिन मैंने पाया कि एक अदत

चपरासी, एक सरकारी मोहर, एक हीटर, एक खड़ंग-बडंग कूलर और मेज से जुड़कर वे अचानक बिजली के लट्टू की तरह दिपदिपा उठते थे।"[38]

मनुष्य और समाज एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। मनुष्य समाज में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत करता है। वह समाज से ही कुछ ग्रहण भी करता है और कुछ देता भी है। समाज हमेशा गतिशील होता है। मृणाल पांडे के उपन्यासों में पति-पत्नी के बीच का संबंध अत्यंत सराहनीय है। पति- पत्नी के संबंध परिवार को आदर्श एवं विकसित पथ पर ले जाने के लिए आवश्यक होते हैं। आज के समय में इन संबंधों में कटुता व्याप्त हो गई है। ग्रामीण जीवन में यह परिवर्तन नाम मात्र है जबकि शहरी जीवन में तलाक तक मामला पहुंच चुका है। आज के समय में स्त्री अपनी अस्मिता को कायम रखना चाहती है। इस संदर्भ में डॉक्टर शिव मूर्ति 'कुच्ची का कानून' नामक कहानी के माध्यम से कुच्ची से कहलवाते हैं कि- "मैं दूसरे से बीज लेकर अपने लिए सहारा पैदा कर रही हूं। मैं अपनी कोख का उद्धार करना चाहती थी। अपने ऊपर लगे बांझ के कलंक को मिटाना चाहती थी। कोख मेरी है तो इस पर हक किसका होगा?..... एक स्त्री का सवाल, आने वाला आ गया तो क्या नाम धरोगी? किसी का नाम धरना जरूरी का अम्मा? अकेले मेरा नाम काफी नहीं है?"[39]

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में पति पत्नी के बीच होने वाले तनाव का जिक्र मिलता है ।इसमें नायिका मंजरी एक गरीब पोस्ट मास्टर की पितृहीन लड़की है। पिता के आज्ञा अनुसार दिल्ली जैसे महानगर में पढ़ रही थी। एक उच्च वर्ग के डॉक्टर से विवाह का प्रस्ताव आया। शादी के एक साल बाद पत्नी को पति छोड़ देता है। आज भी समाज में ऐसा हो रहा है। संबंधों में अलगाव आज आम बात हो गई

है। आज निभाने वाले रिश्ते नहीं बल्कि कपड़े बदलने वाले रिश्ते हो गए हैं। विवाह के कुछ समय बाद ही मानवता की सारी हदें लांघ कर इस समाज के लोग संपूर्ण सपनों को धराशायी कर देते हैं। पिता ने शादी की तैयारियां पुत्र के अनुसार नहीं की थी। पिता अपनी मर्जी के अनुसार लड़की को चुनकर पुत्र को शादी के लिए विवश किया था। पुत्र विदेशी लड़की को पसंद करता था इसलिए वह अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़कर चला गया। बाद में पिता कुछ पैसों का लेनदेन करके उस से मुक्ति पाना चाहता था, अंततः सफल भी हुआ। मंजरी भी आधुनिक युग की स्त्री है वह भी उस परिवार के लोगों के साथ नहीं रहना चाहती। एक पढ़ी-लिखी स्त्री होकर घर में खिलौना बनकर नहीं रहना चाहती, इसलिए तलाक के लिए मंजूरी दे देती है।

पति-पत्नी के संबंधों के बीच आज भी उठा-पटक चलती है। रिश्ते सहमति पर निर्भर होते हैं। एक दूसरे के अनबन, नाराजगी से रिश्ते टूटते रहे हैं। मंजरी के माध्यम से मृणाल पांडे जी ने आज के सामाजिक जीवन के यथार्थ का चिंतन परख उल्लेख किया है। मानवीय मूल्यों में आई दरार समाज को भी चुनौती दे रहा है। विवाह स्त्री-पुरुष के बीच का निर्णय है, मंजरी भले ही तलाक लेकर मुक्त हो गई लेकिन फिर भी वह एक प्रकार से शोषण का शिकार हो रही है। मंजरी के माध्यम से लेखिका ने अनमेल विवाह से होने वाले नुकसान एवं सामाजिक घुटन को दिखाया है।

मृणाल पांडे की कथा साहित्य में मां और बेटे-बेटियों के बीच का संबंध उजागर हुआ है। आज के समय में संबंधों की बुनियाद कमजोर होती जा रही है। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। पुराने जमाने में मां-बाप के प्रति बच्चों का प्यार बहुत होता था। बदलते परिवेश के अनुसार अब रिश्तों में केवल खोखलापन दिखाई देता है। आधुनिक दौर में शिक्षा प्राप्त बच्चे नौकरी करने के लिए विदेश चले जाते हैं वहां की संस्कृति, परंपरा में रच-बस कर वहीं रहना चाहते हैं, वही के ढंग अपना लेते हैं ।इस उपन्यास के माध्यम से मृणाल पाण्डे जी ने गौरवशाली एवं सुशील माँ का जिक्र किया है। मां अकेली ही गांव में जीवन व्यतीत करती है, बेटी का विवाह हो गया है, बेटी ससुर के द्वारा दिए मकान में गुजर करती है। जब समय होता है तो अवसर निकालकर मां से मिलने गांव आ जाती है। बेटी को देखकर मां बहुत खुश होती है वहां के नौकर का वक्तव्य है कि-"खाना भी लली जब तुम आती हो तब ही ये दो टाइम बनावाती हैं। वरना कहती हैं, शाम को सुबह का गर्म करके खा लूंगी, तू जा ।"[40]

यहां पर मां- बेटी का रिश्ता हमारे रिश्ते की उस मिसाल को पेश करता है, जो जन्म-जन्मांतर से हम बड़े प्रेम से परखते आए हैं। अपने संतान के प्रति माँ का कितना लगाव होता है, इसे हम इस उपन्यास में देख सकते हैं। मंजरी अपनी जिंदगी स्वतंत्र जीना चाहती है, अपना दायित्व बोध दूसरे के ऊपर नहीं थोपना चाहती है। मंजरी पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने वाली जिम्मेदार स्त्री है। जीवन की संवेदना एवं स्त्री- अस्मिता के पहलुओं को व्यक्त करने वाली मंजरी, स्त्री जीवन की कठिननाइयों को बड़ी आसानी से हल करती है। एक मां अपनी संतान

के लिए कितना चिंतित होती है? अपनी संतान के लिए मां कितना कष्ट उठाती है। संतान का जीवन संवारने के लिए उसे बचपन से ही अच्छे रास्तों पर चुनने के लिए प्रेरित करती है। कभी भटकाव में नहीं ले जाती। भटकते हुए रास्तों की पगडंडियों से खींचकर जीवन के यथार्थ से परिचित कराती है। 'मै तेरे भले के लिए कह रही हूं' मंजरी की माँ ने कड़छी चलाते हुए कहा था-"इतना मान अच्छा नहीं होता। अरे, दिल्ली में तेरे लिए नौकरियों की कमी नहीं। तेरे पास सब तो है काबिलियत, पर्सनैलिटी, खानदान। जब कह रहे हैं कि आकर अपनी अर्जी दे जा, तो जाती क्यों नहीं? बिना तेरे मागे घर आकर कौन देगा तुझे नौकरी?"[41]

बेटी और मां दोनों एक- दूसरे की बात मानती हैं ,फिर भी मंजरी के अंदर विद्रोह की प्रवृत्ति कहीं न कहीं दिखाई देती है। मंजरी हमेशा अपना मंतव्य खुलकर पेश करती है। किसी मुद्दे पर मां से असहमति होते हुए तीखी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करती है। हमारे समाज में बहुत से ऐसे लोग हैं जो विवाह के बाद अपनी अलग दुनिया बसा लेते हैं, मां-बाप से किनारा कर लेते हैं, बदलते परिवेश में पाश्चात्य प्रभाव, फैशन परस्ती या स्वार्थीपन के कारण रिश्तों में जो अकेलेपन की सुगबुगाहट सुनाई देती है, वह मानवीय मूल्यों को विघटित करता है। मंजरी के भाई को भी माँ ने पाल- पोस कर बड़ा किया पर रिश्तों में दूरी बनने में देर नहीं लगती। नौकरी के बाद वह मां से अलग दुनिया बसा लेता है आधुनिक समय में मां-पुत्र के रिश्ते में गिरावट आयी है। आत्मसम्मान और आत्मीयता का भाव गायब होता जा रहा है। पुत्र केवल मां का हाल जान लेता है, वह अपनी मां से मिलने नहीं आता। रिश्तों की दहलीज पर घुट- घुट कर मर रही मां के जीवन को फिर संभालना

चाहती है। इन सब के बावजूद वह पुत्र से प्रेम की आकांक्षा रखती है। मां होते हुए पुत्र को अलग नहीं देखना चाहती है।

भाई- बहन के रिश्तों में अब तक जो मार्मिक सच्चाई पता चलती है उसे 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में देखा जा सकता है। रिश्तों में विडंबना और विसंगति को तार-तार करता हुआ मनुष्य मानवीय संबंधों में कितना सेंध कर रहा है। औद्योगीकरण के दौर में टेक्नोलॉजी की दिमाग रखने वाला मनुष्य रिश्तों को कब तक ऐसे उलझाता रहेगा? स्त्री इस वजूद को बखूबी समझती है। मंजरी हमेशा अपने भाई के ऑफिस में मिलती थी लेकिन कभी उसके घर नहीं जाती थी। वह भी अपने इज्जत और सम्मान को बचाए रखना चाहती है। मृणाल जी ने इस संदर्भ के माध्यम से एक बहन और एक स्त्री की महत्वाकांक्षा को दिखाया है। आने वाले समय में भाई-बहन के बीच यह रिश्ते कैसे खंडित हो रहे हैं? मंजरी के भाव को व्यक्त करती मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- " भाई और मेरे बीच पुरानी टूट की दरार... पूरा नहीं हो पाई कभी। सिर्फ इतना हुआ है कि दोनों ओर उस पर अति परिचय का हिम वारिधि फैल गया है। सहोदरों कि सूँस इंद्रियों ने हम दोनों को बता रखा है कि स्मृतियों की बर्फ भले ही एक पुल का आभास देती रहे, पर भीतर- भीतर कभी भी वह खतरनाक रूप से पाली जाती है.... पुल से फिसल कर बर्फ के नीचे फैले स्याह ठंडे जल में धसना और असहाय होकर डूबना हम दोनों में से कोई नहीं चाहता। वैसे भी मेरी राय में नकली प्रेम के भौड़े प्रदर्शन की बजाय सच्ची घृणा का ठंडापन कठोरता से स्वीकार कर लेना अधिक गरिमामय है। "[42]

मंजरी आत्मविश्वासी है, वह भेदभाव, पाखंड की दुनिया में नहीं जीना चाहती है। अपने कर्मों पर विश्वास करने वाली अपनी मां और भाई के रिश्तों के प्रति सहज है। मन में क्रोध जरूर है लेकिन रिश्तों में मानवीयता का भाव है ।अपनी जीवनशैली को सहज सुलभ बनाती हुई उनकी सहमति से चलना चाहती है। अपने ससुर के प्रति जो कटुता है ,जो भावुकता है, उसमें मंजरी भाग्य के रूप में तौलती है जैसा कि एक स्त्री हमेशा किया करती है। इस संदर्भ में मृणाल पाण्डे ने जो उदाहरण दिया है वह इस प्रकार है-"बृहदारण्यक उपनिषद कहता है कि सच का मुख सोने के ढक्कन से ढका रहता है। ढक्कन हटाओ तो जो सच दिखाई देगा अक्सर वह अचंभे में डाल देता है। काफी कुछ ऐसा ही देखा था मैंने भी अपने ससुर कुल में रहते हुए।"[43]

मंजरी प्रारंभ से अपने जीवन के प्रति सचेत थी, लेकिन वैवाहिक जीवन उसमें संपूर्ण आकांक्षाओं पर पानी फेर देता है ।संभवत स्त्रियों की शादी के बाद बदली जिंदगी उनके लिए कितना अच्छी है? कितना खराब, इसका अंदाजा लगाना शायद स्त्री से ही जाना जा सकता है। अपनी शादी के दिनों को याद करते हुए मंजरी कहती है कि बुआ ने मंडप में किसी से कहा था कि- "जमीन पर रहकर आसमान में सोने की थेगली लगा आई है हमारी विधवा भावज! अजी हां। फिर कट टू कट उसी फिल्म में मुझे अपनी मां का कोमल करुड़ मुख दिखता है, उपवास और बिछड़ने की व्यथा से कुम्हलाया! क्षण-भर को वह पीला चेहरा और विषण्ण होता है, फिर संभलता है-" शुभ-शुभ बोलो लली। इस बखत तो आशीर्वाद दो, छोरी को!"[44]

मृणाल पाण्डे ने इसी समाज में रहकर स्त्रियों के प्रति डॉक्टर के रवैये, उनकी सोच और कलाकारी को बड़े विस्तृत ढंग से समझाया है। गरीब औरतों के जिंदगी की यह दशा स्त्रियों की जिंदगी का खाका खींचता है। मंजरी के ससुर कहते थे कि- "सिर्फ जीना ही काम्य नहीं है, जिए जा रहे जीवन की उत्कृष्ट गुणवत्ता भी होनी चाहिए। जीवन की गुणवत्ता दी क्वालिटी आफ लाइफ, यह मानदंड था जिसे दिखाते हुए उनके मातहत डॉक्टरों की टीम अमनियोसेंटिसिस तकनीक से गर्भ जल जांच कर बेटे की हवस से पगलाती माँओं को अनचाहे कन्या भ्रूणों से ग्लानिरहित मुक्ति दिला देती थी! यही टीम क्लोरोक्विन के इंजेक्शन ठोक कर गरीब औरतों के सस्ते गर्भपात मुहैया कराने के साथ ही उनको बधिया भी कर देती थी, ताकि वह आगे गर्भाधान का कष्ट बेचारियां बार-बार न झेलें और लिपोसक्शन तकनीक से अमीर औरतों के छातियों और जांघों से मोटापा तराश कर वह उनको भी ऐसी कमनीय छरहरी देहें दे देती, कि उनके पति अपनी रखैलों और सेक्रेटरियों के प्रेम जाल से कुछ अरसे तक विरक्त हो जाते। क्वालिटी आफ लाइफ यानी जीवन की गुणवत्ता। इसी को तो कस्तूरी- मृग की तरह खोजती फिरती है दुनिया,है कि नही?"[45]

आधुनिक समय की स्त्रियों का प्रतीक नायिका मंजरी अपने दम पर पति और ससुर की इच्छा का विरोध करती है। उन्हें सबक सिखाती है। भारतीय समाज में स्त्री जब विरोध करती है तब वह अपना तर्क प्रस्तुत करती है। तार्किकता एवं बौद्धिकता के बल पर मंजरी पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे इन घटिया मानसिकता वाले लोगों को राह दिखाना चाहती थी। वह सीधे-सीधे रिश्तों की

अहमियत पर बात करते हुए कहती है कि-"हां झूठ क्यों बोलूं, एक हल्की उत्सुकता-सी जरूर मेरे भीतर थी, यह जानने की, कि उसके मामा जी- पापा जी अपनी स्वीकृति देने से अब तक क्यों हिचकिचाते रहे हैं? क्या पापा जी को कहीं इस बात का पश्चाताप है कि उन्होंने बेटे को अपनी पसंद की एक शादी में व्यर्थ बांध डाला? या कि मामा के मन में कहीं इस बात को लेकर एक गुप्त विजय- दर्प छुपा बैठा है कि पति की पसंद को उनके बेटे ने भी यूं ठोकर मार कर परे कर दिया है, ज्यूँ वह एक ठीकरा हो?"[46]

स्त्री जीवन में हर क्षण फूक-फूक कर कदम रखती है ।वह सच्चाई को जानना चाहती है। मंजरी कहती है कि-"मैंने सीखा है कि हर तरह का जीना एक रोल खेलना होता है। कुछ लोग यह काम जिंदादिली से करते हैं, कुछ झींक-झींक कर! झींकना जितना बेकार है। घटिया एक्टिंग करना भी उतनी ही बड़ी बेवकूफी होगी।"[47]

मंजरी के साथ-साथ बंटी की मां पार्वती भी प्रगतिशील चेतना का प्रतीक है। पुरुषों के सभी मानदंडों को वह खारिज कर देना चाहती है। स्त्री अधिकारों को बताते हुए कहती है कि हम भी अब स्वतंत्र है, हम पुरुषों की कितना चिंता करें। वह (पार्वती) कहती है कि- "मैं इनसे कहती हूं, पर खाना है, तो बाहर से लेके आओ तुम लोग! पार्वती तुम्हारे मे से किसी के लिए नहीं रांधेगी। इन मर्दों के लिए सब करो दीदी,पर इनको अपने हाथ से पका के कभी मत खिलाओ। साले तब अपनी बीवी समझ के बड़ा रौब गाँठने लगते हैं। हल्दी क्यों ज्यादे हैं, नमक क्यों कम है ,करके!

अरे वो सब चाहिए तो घरवाली के लहँगे में घुसो जा के! साली पार्वती ढाबा नहीं चलाती किसी मरदुए की खातिर।"[48]

औरतों की दुनिया में भाग्य, जन्म-मृत्यु एवं विपत्ति का चक्र पुरुषों ने थोप रखा है। स्त्री आज मानसिक रूप से इस का शिकार हो जाती है तब उसे स्वीकार कर लेती हैं। मृणाल पांडे ने स्त्री जीवन की विडम्बनाओं को साफ शब्दों में कहती है कि- "कहते हैं, आज की दुनिया में मौत भी अपना मतलब खो चुकी है। उतर आधुनिक बन गई है मौत भी, रिश्तों की ही तरह। पर कई बार जब आसमान यू खाली और नीला और भूख से चमकता हुआ हो, तो यकीन होने लगता है कि रोजमर्रा की जिंदगी का सारा ताम-झाम दरअसल मौत के उस अंतिम और आतंककारी अनुभव पर पर्दा डालने के लिए ही रचा गया है।"[49]

पढ़ी-लिखी औरतें आज सामाजिक संदर्भों, राजनीतिक छलाओं, रूढ़ियों एवं स्वेच्छाचारिता से परिचित हो चुकी है। धन-दौलत के बल पर इसी समाज ने उन्हें गुमराह बना रखा है। स्त्रियां अपने जीवन के तनाव को कम करने के लिए स्वयं रास्ता निकालती हैं। अपनी जिंदगी में हो रहे कोलाहल को शांत करना चाहती है। स्त्री संवेदना कि जिस पक्ष की वकालत मृणाल पांडे ने किया है वह सचमुच स्त्री-विमर्श के पक्षकारों का पर्दाफास करता है ।दो-चार पुस्तके पढ़ कर दो- चार गोष्ठियों का आयोजन कर ,महिला संगठन से जुड़कर, स्त्री-पक्षों को समृद्ध बनाने की तारीफ करके इसी समाज में जो स्त्रियों को 'स्त्री-अस्तित्व का मीठा जहर देना चाहते हैं, ऐसे लोगों के लिए मृणाल पांडे ने अपने इस उपन्यास में सीधा- सीधा जवाब दिया है। स्त्री- अस्तित्व की सीमा रेखा को खींचती हुई लेखिका ने स्त्री के वजूद तथा

उनकी सहनशीलता, आधुनिकता का चित्रण किया है वह सराहनीय है। मृणाल पाण्डे का कहना है कि-"इससे कहीं ज्यादा ईमानदार तो वे पड़ोसी औरतें थी जो सीने पर दुहत्थड़ मारकर मृतक बंटी की मां से कह रही थी कि वह भी पुक्का फाड़कर रो लें, उसका गया हुआ लाल लौटकर नहीं आने वाला।यह गमों की अधक सहचरी औरतें थीं, जो किताब पढ़कर गम या भोजन नहीं घटातीं, न हीं संगीत बजाकर ऊब या तनाव कम करती हैं। ये वे औरतें हैं जिन्हें हर बार मौत को सलाम करने के बाद उसाँस लेकर फिर से जीवन की दौड़ में जुटना है। उत्तर-आधुनिक मौत उनके बस का रोग नहीं।"[50]

मृणाल पाण्डे ने अपने कथा संसार में स्त्री जीवन से जुड़े कई बिंदुओं पर विचार किया जैसे- औरतों की कमजोरी क्या है? उनकी भावुकता कहां तक बढ़ जाती है? उनकी दुनिया में होने वाली घटना तथा जीवन के अनुभवों को बड़ी ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। मृणाल पाण्डे के अनुसार - "औरतों की ऐसी कमजोरी, जो उन्हें अपने ही आतताई के चरण थामकर लौटने और उसकी अनुनय-विनय करने को बाध्य करें, देखकर मुझे हमेशा उबकाई आती है। घर से भाग कर मूर्ख किस्म का प्रेम करेंगी, फिर दोगला प्रेमी दगा दे जाए और एक अदद हरामी औलाद गोद में आन पड़ी, तो सिर्फ कटी मुर्गी की तरह दड़बे के इस कोने तक मौत छीटती हुई दौड़ेगी। ऐसियों के तो बच रहने का ही आश्चर्य है, गए अचंभा कौन ? अपना दुखड़ा रोने को उन्हें पी.सी. या मेरे जैसा कोई वीतरागी चाहिए होता है, कि आह जिंदगी ने उन्हें कैसे तिक्का- बोटी करके घूरे में डाल दिया रे, और ऊपर से प्राण चूसने को दे दी औलाद, वरना कहीं कुआं- बावड़ी तलाश लेती।"[51]

मृणाल पांडे पत्रकार भी है, इसलिए पत्रकारिता की दुनिया में अनुभवों को स्त्री कथा के बीच में रखकर वहां की जिंदगी तथा कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया है। मंजरी भी पत्रकारिता में काम करती है। लोग पत्रकारों से नाक-मुँह सिकोड़ते हैं। मीडिया की दुनिया की हकीकत को इस प्रकार व्यक्त किया गया है- "हम पत्रकारों की जात बहुत बातून हैं। दफ्तर में बोलने की जगह चिल्लाना, पत्रकार-क्लब से लेकर लिफ्ट चढ़ते- उतरने तक स्फीतिमय अफवाहों- बातों को लेकर दिन- रात नाटकीय हल्ला- गुल्ला, यह हमारे दैनिक जीवन का साँस लेने जैसा सहज अंग होता है। तब जब मैंने इस धंधे में कदम रखा था, औरतें विरल थीं। सुबह गर्मी की नदी की तरह क्षीण, विरक्त करने वाली गति से चलता काम दो-तीन बजे रिपोर्टरों के आते- आते ध्वंसकारी और प्रगल्भ बन जाता। इस हो -हल्ले के बीच तनिक रुक कर जीवन के किसी बहुत नाजुक, बहुत निजी और करुण प्रसंग पर उंगली रखाई जाए भी, तो कैसे?"[52]

भाषा के माध्यम से स्त्री चेतना को व्यक्त किया गया है। स्त्रियों की अपनी खुद की भाषा होती है। अपना लिखना, अपना पढ़ना, अपना रोना, आदि सब कुछ हकीकत होता है। कहीं से बनावटीपन नहीं, न दूसरे से उधार लिया होता है। भाषा में अपनापन झलकता है। हिंदी, संस्कृत, उर्दू , अंग्रेजी सभी शब्दों का इस्तेमाल धड़ल्ले से स्त्रियां करतीं हैं। जरूरत पड़ने पर अंचल विशेष की शब्दावलियों का इस्तेमाल उपन्यास में किया गया है। भाषा परिवेश को व्यक्त करती है, जिससे उपन्यास में रूचि पैदा हो जाती है। यहां कल्पना की प्रधानता नहीं है, स्त्रियों की कथा- व्यथा कहने की भाषा का अपना अलग अलग अंदाज है .....।

'हमका दियो परदेश' उपन्यास में स्त्री विमर्श'-

मृणाल पांडे मन की गहरी परतों को खोलने वाली कथाकार हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में बड़ी सरलता से स्त्री- अस्मिता, स्त्री के अनुभव, स्त्री- जागृत, स्त्री की शक्ति के संसार का जो जिक्र किया वह स्वतंत्रता के बाद के कथाकारों के साहित्य में बहुत कम मिलता है। लेखिका पत्रकारिता से भी जुड़ी हैं इसलिए जगह-जगह जाकर स्त्रियों की क्षमता का ग्राफ तैयार करना, रिपोर्ट लेना, उनसे बातचीत करके उनकी निजी जीवन की समस्याओं को जानना, फिर साहित्य में उनका उल्लेख करना उचित प्रमाण सिद्ध होता है।

स्त्री का आत्म-सम्मान, आंतरिक परेशानियां, बदलते परिवेश की सजगता का यथार्थ अंकन एवं लेखिका ने अपने बचपन से जोड़कर साथ ही साथ पूरे जीवन को यादगार बनाया है। संस्मरणात्मक शैली की तर्ज पर उपन्यास को ऐसे पारिवारिक मूल्यों में गूंथा है कि पारिवारिक जीवन की स्मृतियों से जुड़े सभी सवाल फिर जिंदा हो जाते हैं। स्त्री परंपरा और संस्कृति के नकार- स्वीकार को कई दृश्यों से परखा है।' हमका दियो परदेश' उपन्यास में बेटा- बेटी के भेद को दिखाने का प्रयास किया है । आज भी हमारे समाज में बेटी की अपेक्षा लोग बेटे को ज्यादा महत्व देते हैं। हमारी सामाजिक सोच ने जिस तरह की पलटी मारी है, उससे बेटियों की संख्या एवं उनके महत्व में कमी आई है यही कारण है कि समाज में भ्रूण हत्या, महिला उत्पीड़न, दहेज जैसे तमाम दृश्य सामने आए हैं। बेटे के स्थान पर यदि घर में बेटी का जन्म हुआ तो सबका मुंह बन जाता है। उपन्यास में लड़की टीनू जन्म से ही अपने लड़की होने की एहसास को महसूस करती है और लड़की होने के कारण

मिलने वाली यातनाओं को बखूबी समझती है। टीनू बचपन से ही बेटे-बेटियों में होने वाले इस सामाजिक भेद को समझ जाती है। टीनू नैनीताल में रहती है। कुछ समय बाद जब वह अपनी मौसी की शादी में अल्मोड़ा आती है तो वह देखती है कि- "लोगों से अटे घर में जहां बेटों के बेटी की ही पूछ होती हो बेटियों की बेटियों का काम चिड़चिड़ी या रोनी होने से नहीं चलेगा उन्हें बड़े लोगों की निगाह में बतरस का जादू जगाना आना चाहिए।"[53]

समाज में शुरू से ही लड़की के खाने-पीने, हंसने, घूमने आदि पर नजर रखा जाता है, जबकि लड़कों पर इतनी पाबंदी नहीं होती। टीनू बचपन से ही इन संपूर्ण दृश्यों को देखती है, शुरू से ही स्त्री की एक सीमित दुनिया बना दी गई। परिवार में सीमित होकर उनकी मान्यताओं का पालन करें, सबको साथ लेकर चले तथा रीति-रिवाजों का पालन करें यही सीख दी जाती है। टीनू भी सोचती है कि क्या वह इस संसार की इन्हीं बंदिशों में जियेगी? घर- परिवार में जब टीनू और उसकी बड़ी बहन दीनू हंसती हैं तब उसकी मां बहुत क्रोधित होती हैं तब कहती है कि-"बहुत हंसने के बाद बहुत रोना पड़ता है, लड़कियों का अति हंसना ठीक नहीं होता।"[54]

मृणाल पांडे ने इस उपन्यास में मां के छलकते दर्दों को बड़ी बेबाकी से प्रस्तुत किया है। माँ के लिए उसकी संतान सदा आदर्श होती है, भले ही संतान मां का मूल्य न समझे। समाज में बेटियों के लिए मां प्रिय होती है बेटों के लिए पिता। होता भी अक्सर ऐसा ही है कि बेटियां अपनी परेशानी, अपनी बातें, मां से ही प्रकट करतीं हैं, पिता से कितना कहतीं हैं यह सब जानते हैं? उपन्यास में टीनू की मां दीनू की सौतेली मां है। सौतेली मां का जब जिक्र होता है तब टीनू की मां बहुत दुःखी हो

जाती है। टीनू अपने मां के दर्द को महसूस करती है। मृणाल पांडे ने मां की उस ममता का अश्रुपूर्ण वर्णन किया है। टीनू कहती है कि-"मुझे मालूम है कि अक्सर मां बाथरूम में नल चलाकर खूब रोती हैं। वे समझती हैं कि इस तरह पानी बहने से कोई उनके रोने की आवाज नहीं सुनेगा। लेकिन मैं तो सुन पाती हूं। मेरी आँखों में जलन होने लगती है और फिर मैं बाहर जाकर खूब दंगा करती हूं ताकि मैं वह भयानक आवाज भूल जाऊँ जो बड़े लोग अपनी सिसकियां दबाते हुए निकालते हैं।"[55]

आज के दौर में होने वाले प्रेम विवाह, अपनी मर्जी से जीवन साथी चुनने से आई दिक्कतें, तथा रीति-रिवाजों का मूल्य क्यों घटा है? इसकी वास्तविकता को मृणाल पांडे ने टीनू की नानी के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। यह कलयुग ही है जो हमारे समाज में फिल्मी पत्रिकाएं लाया जिनकी वजह से मर्दों और औरतों के बारे में कई रसीले किस्से फैले और जिन्होंने लोगों के हृदय में ऐसे विचारों को भर दिया कि जल्द ही यह समाज प्रेम की महामारी से ग्रसित हो गया ।पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ते प्रभाव और फैशन की दुनिया में वापस आते ही लोगों ने समाजके बने नियमों की हदों को पार कर दिया है। धर्म- मर्यादा, सामाजिक मूल्यों से मनुष्य कटता जा रहा है, फिर जब से फिल्मों की दुनिया में समाज ढ़लना शुरू हुआ तब से तो मानो हर व्यक्ति उसी का शिकार हो गया। स्त्रियां इसका शिकार ज्यादा हुई। बाद में उन्होंने इसका दर्द भी झेला है। टीनू की नानी कहती है कि- "मरे कमबख्त सिनेमा के बनने से पहले बिनब्याहे छोकरे- छोकरियों को ऊटपटांग बातें नहीं सूझती थी। वो, जिसे उनके घर वाले ढूंढ लाते थे, उससे ब्याह कर लेते थे। नानी का

कहना था कि जवान लोगों की अभिलाषा इतनी ही होनी चाहिए कि उन्हें अच्छा जीवन साथी मिले और वह बड़े बूढ़ो की सेवा करके पुण्य लूटे।"[56]

इसके साथ ही टीनू की नानी की साथी हीरादी भी यही कहतीं हैं कि- " किसी ने कहा था कि कलयुग में औरतें विचित्र किस्म के बाल बनाया करेंगी ,मर्द सुध-बुध खो कर उनके पीछे दौड़ा करेंगे और बड़े बूढ़ों को कोई नहीं पूछेगा।"[57]

कुल परंपराओं की ताक पर घर- परिवार में लड़कियों को तौला जाता है। घर में लड़कियों को लड़कों की अपेक्षा उचित व्यवहार नहीं होता। हमारे समाज में संवेदना धीरे-धीरे खत्म हो रही है। टीनू जब छोटी थी तो उसने देखा कि उसी के घर में इष्ट देवता का प्रसाद केवल लड़कों को मिलता है लड़कियों को नहीं मिलता। ये परंपराएं या मनगढ़ंत बातें कब तक स्त्रियों को इन मर्यादाओं और अंधविश्वासों में जकड़े रहेंगीं ? मुक्त होने वाली नारी सौ- वर्ष बीतने के बाद भी इन रस्मों- रिवाजों से लड़ पाएगी या नहीं। मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि-"विश्वास नहीं होता कि कुछ ही मिनट पहले मैं फूट-फूट कर रोती इस रसोई में आई थी क्योंकि मुझे इष्टदेव का प्रसाद नहीं दिया गया था ।अनु और शुभा को प्रसाद मिला था पर जब मैं और दीनू आगे बढ़े तो मौसियाँ मुस्कुराई थीं, नहीं बेटियों की बेटियां इष्ट देवता का प्रसाद नहीं पा सकती, इष्ट देवता का प्रसाद सिर्फ बेटों के बच्चों और अनव्याही बेटियों को यानी खुद उन्हें ही मिल सकता है।"[58]

स्त्री-विमर्श की दृष्टि से टीनू की मौसी की चर्चा की गई है उनकी मौसी पढ़ी लिखी थी, वह शिक्षित व बुद्धिमान महिला थीं, विवाह नहीं करना चाहती थीं। मृणाल पांडे जी ने नारी पात्रों का चयन सामाजिक स्थिति के अनुसार किया है। टीनू

अपनी मौसी के संबंध में कहती हैं कि- "मौसियों के मिजाज की थाह पाना मुश्किल है। गुस्सा और नरमी उनमें एक साथ भरे हैं। जब सब ठीक-ठाक होता है यानी जब जवां दिल देवानंद, हसीन सुरैया की और ख्वाबीदा आँखों वाला दिलीप कुमार परीसूरत मधुबाला की दिलजोई कर रहे होते हैं, तब वे एक- दूसरे को टहोके मारती हँसती- खिलखिलाती हैं। लेकिन कभी-कभी कपड़े में सुइयां घोंपते, न जाने किस बात पर उनका गुस्सा लपट मारने लगता है- कोई मौसी अचानक सुबक उठती है, बाकी उसे थामतीं हैं।"[59]

हमारे समाज में ही औरतों को कम बोलने को कहा जाता है। जीवन को परंपराओं के अनुसार जीने को बताया जाता है। स्त्रियां अपने ही परिवार में किस तरह से शोषण का शिकार होतीं हैं? मृणाल पांडे ने इस उपन्यास को कई शीर्षकों में विभाजित किया है- अथ मयूर कांड, उड़ने वाला साँप, अब्दुल्ला, हमारी मौसियाँ, हमारा भैया, पेटीकोट की बयार, यात्रा आदि। उपन्यास में बुजुर्गों की पहचान एवं संस्कृति को महत्व देते हुए स्त्री- विमर्श का मूल्यांकन किया गया है। मृणाल पाण्डे ने अपने ही परिवार की स्त्रियों का हश्र बताते हुए उनकी स्थिति पर प्रकाश डाला है जो इस प्रकार है- "उनके घर की सभी औरतें धीमी सुर में बोलती और अपने नीम-अंधेरे जनाने कमरों में भी सिर ढ़के रहतीं। उनके कमरे हमेशा चकाचक साफ रहते और उनमें कपूर और गीले ऊन की गंध भरी रहती। हमारे घर की हमेशा बोलती रहने वाली औरतों के मुकाबले वे कुछ चुप- चुप, चौंकी-सी और उन लोगों सी दिखाई देती थीं जिनकी राय कभी पूछी नहीं जाती। उस घर की पोतियां खुशमिजाज, प्यारी, खिलखिलाती रहने वाली थीं, वह हमें बाहों में भर लेती और खूब खिलाती-

पिलातीं। हमारे मामा जो झूठ- मूठ का इश्क जताते और करीब-करीब घोड़ी हरकतें करते, उनका वह हँस-हँस कर बखान करतीं। घर की बहू और बेटियां, मामी से अक्सर मिलने आतीं और एक नजाकत और विदेशी इत्रों की गंध साथ लातीं । हमारे परिवारों के बीच गहरा और सचमुच का प्यार था।"[60]

इस उपन्यास की भाषा पूर्णतः स्त्रियों के घर- परिवार की भाषा है। उनके अंदाज, उनके तेवर व्रत, पूजा तथा जीवन के समस्याओं से जुड़े मुद्दों का मसला बड़ी सावधानी से दिखाया गया है। लगता है कि भाषा के माध्यम से मृणाल पाण्डे स्वयं बोल रही हैं। 'हमका दियो परदेस' उपन्यास के बारे में यह मिलता है कि- "मृणाल पाण्डे की कलम की संधानी नजर से कुछ नहीं बच पाता- न कोई प्रसंग न संबंधों के छद्म। घर के आंगन से कस्बे के जीवन पर रनिंग कमेंट्री करती बच्ची के साथ- साथ उसके देखने का क्षेत्र भी बढ़ता रहता है और उसके साथ ही संबंधों की परतें भी। अंत तक मृत्यु की आहट भी सुनाई देती है।"[61]

'अपनी गवाही' उपन्यास में स्त्री विमर्श -

मृणाल पाण्डे ने 'अपनी गवाही' नामक उपन्यास में पत्रकारिता और राजनीति के अंतर्संबंध का चित्रण किया है, जैसा कि शीर्षक से ही ज्ञात होता है। कहा जाता है कि यह उपन्यास उनकी आत्मकथा है। उपन्यास पढ़ते समय यह प्रतीत होता है कि उपन्यास की नायिका कृष्णा स्वयं मृणाल पांडे हैं। यह उपन्यास फ्लैशबैक की पद्धति पर लिखा गया है। कृष्णा तस्वीरों को देखकर अतीत के दिनों को याद करती है और देर रात तक सोचती रहती है, सो नहीं पाती। मृणाल पांडे का यह उपन्यास पत्रकारिता की दुनिया

का ग्राफ उपस्थित करता है। पत्रकारिता क्षेत्र में क्या-क्या कठिनाइयां हैं? किन-किन मसलों का सामना करना पड़ता है? एक स्त्री यदि पत्रकारिता के क्षेत्र में जाना चाहती है उसे क्या-क्या करना पड़ेगा? मृणाल पाण्डे भी पत्रकार हैं इसलिए उन्होंने पत्रकारिता को कथा संसार के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। पत्रकारिता का मानव जीवन में कितनी भूमिका है? यह उपन्यास साहित्य ,समाज और पत्रकारिता तीनों के बीच की कड़ी को जोड़ता है। स्त्री जब पत्रकारिता की दुनिया में प्रवेश करती है तब वह समाज को किन नजरों से देखती है ? जिस क्षेत्र में जाने के लिए शुरू- शुरू में स्त्री को अटपटा सा लगता है यदि उसी क्षेत्र में स्त्री आगे बढ़ गई तो फिर समाज की हर स्त्री उससे मुंह नहीं मोड़ेगी।

मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "सत्तर के दशक में अंग्रेजी मीडिया में आए उफान में अंग्रेजी और उसके पत्रकार सातवें आसमान पर पहुंच गए जबकि भाषायी पत्र-पत्रिकाओं पर उनके मालिक कुंडली मारे बैठे रहे- खासकर अब के दौर में मीडिया साम्राज्यों का संचालन करने वाले मालिक- संपादकों की फौज। पुरानी बिल्डिंग के अंधे और तंग दफ्तर से शुरुआत करने वाली कृष्णा नई बिल्डिंग के अंग्रेजी संपादकों और पत्रकारों के नाज - नखरों को कुछ ईर्ष्या से, कुछ क्रोध से और कुछ मजे ले कर देखती है। लगभग बेमतलब विषयों के रिपोर्टर से बढ़ते-बढ़ते एक राष्ट्रीय दैनिक की पहली महिला संपादक, देश की सबसे लोकप्रिय टीवी चैनलों में से एक की न्यूज़ एंकर बनने तक मीडिया के बदलते स्वरूप को बहुत पास से देखती है। वह देखती है कि राजनीतिक और आर्थिक फायदों की लड़ाई मीडिया के सहारे

कैसे लड़ी जाती है, और वह पाती है कि इन अधिकांश मामलों में सच्चाई ही बलि चढ़ती है।"[62]

जैसा कि पहले से ज्ञात है कि मृणाल पाण्डे के उपन्यासों में मुख्य पात्र स्त्री ही होती है।' अपनी गवाही' उपन्यास में भी मुख्य पात्र नायिका कृष्णा है। कृष्णा जब पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखती है तब से तमाम नसीहतें मिलतीं हैं। घर- परिवार से लेकर हर जगह एक नई दुनिया से साक्षात्कार करना पड़ता है। समाज एक स्त्री को सामाजिक नजरों से देखेगा कि नहीं? यह सवाल जब कृष्णा के मस्तिष्क में उठते हैं तब वह सोचती है कि वह अपने कर्तव्य से साझी हो पाएगी या नहीं। लेकिन कृष्णा जब फैसला कर लेती है कि मुझे पत्रकारिता के क्षेत्र में ही जाना है, वहां की सच्चाईओं को जानना है, सामाजिक सेवा का भाव पत्रकारिता में है कि नहीं है, समाज की समस्याएं, देश की समस्याएं, जितना वहां उछाली जाती हैं वे सभी सही होती हैं कि नहीं, उन सब में कितनी सच्चाई होती हैं। मीडिया की दुनिया में काम करने से स्त्रियां भी अपने अस्तित्व को पा सकती हैं या केवल यह मीडियाई संसार पुरुषों के लिए ही बना है? यह सभी सवाल उसके मन में उठ रहे थे। कृष्णा जब अपने कदम उठाती है और पत्रकारिता को पसंद करती है तब उसकी मां कहती है कि - "लेकिन तुझे बड़ी देर-देर तक काम करना होगा? पॉलीटिकल प्रेशर होंगे? राजनेताओं की संगति में ज्यादा दिखने वाली औरतों को मर्द आदर के साथ नहीं देखते।"[63]

195 पृष्ठों में लिखा गया यह उपन्यास पत्रकारिता के साथ-साथ मां बेटी के रिश्ते, घर- परिवार के रिश्तों, दहेज की समस्या, पहाड़ी जीवन का चित्रण, आंचलिकता, आदि की गहरी संवेदनाओं को अपने अंदर समेटे हुए हैं। मृणाल पांडे ने मूलतः मीडिया और स्त्री को केंद्र में रखकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना है। नारी को नारी समझा जाता है परंतु आज जरूरी है कि उसे मानवीय रूप में देखा जाए। नारी को जिस शक की दृष्टि से देखा जाता रहा है, उसे घृणित, शोषित समझा जाता रहा है। उसी नारीत्व की पहचान के लिए स्त्री ने बाहर की दुनिया में अपना स्थान बनाया। साहित्य से लेकर पत्रकारिता की राह का सफर पूरा किया। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता के प्रति स्नेह के फलस्वरूप नारी के जीवन में जो विसंगतियां आई हैं, उसके साथ बहुत बदलाव भी हुए हैं। स्त्री अपने संस्कारों से मुक्ति मिले बिना नवीन तालमेल के साथ समस्याओं को दरकिनार करती गयी। मृणाल पाण्डे ने जीवन की समस्याओं पर तीखा व्यंग्य किया है। स्त्री ही उन समस्याओं की शिकार क्यों होती है? जब एक पुरुष जीवन के किसी भी क्षेत्र में पांव पसारता है तो उसे कम रुकावटें आती है मगर स्त्री के लिए वही संसार जीवनभर के लिए कांटा बन जाता है। आज नारी ने मातृत्व और समाज सेवा का जो रूप गढ़ा है, अपने अस्तित्व को संवारने के लिए सामाजिक अपमानों को झेला है वही अपमानित पल आज उसे समाज में ऊंचा स्थान दिला रहे हैं।

नायिका कृष्णा के नाना कुमायूं के एक छोटे से शहर में डॉक्टर थे। वे छुआछूत का विरोध करते थे। जबकि कृष्णा की नानी परंपरा वादी थी। वह कर्मकांड में विश्वास करती थी इसलिए जब कृष्णा के नाना ठंड में

अस्पताल से आते हैं तो वे उन्हें नहाने के लिए कहतीं है स्त्रियां परंपरा का पालन करती हैं, अपनी संस्कृति एवं पुरानी परिपाटी को जीवित रखना चाहतीं हैं। संस्कृति के मूल्यों को छिन्न-भिन्न नहीं होने देना चाहती हैं। कृष्णा की मां पार्वती पहाड़ पर रहती हैं। उन्हें पहाड़ी जीवन पसंद है, वह पढ़ी-लिखी महिला है। नियमित समाचार पत्र पढ़तीं हैं। कृष्णा अपनी मां से बहुत प्रेम करती है। कृष्णा के पति सरकारी नौकरी करते हैं जिसमें उन्हें ट्रांसफर के कारण खानाबदोशों की जिंदगी जीना पड़ता है। कृष्णा और उसके पति को ऐसी जिंदगी पसंद नहीं है यही कारण है कि उसके पति सर्विस छोड़ देते हैं।

कृष्णा भी प्रारंभ में एक विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्राध्यापक थी। वह तीन विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर चुकी है। अंत में सब कुछ छोड़कर पत्रकारिता का क्षेत्र चुनती है, अंग्रेजी की दुनिया छोड़कर हिंदी पत्रकारिता का कार्यभार ग्रहण कर लेती है। हिंदी पत्रकारिता में आने के बाद कृष्णा सबसे पहले अपने चुन्नू चा से सलाह लेती है तो वे उसे हिंदी समाचार एजेंसी में काम करने से मना कर देते हैं और विरोध करते हुए कहते हैं कि-"बेशक प्रिंट मीडिया में जाओ लेकिन हिंदी क्यों? जब तुम्हारे पास अंग्रेजी मे मास्टर्स डिग्री है तो भाषायी पत्रकारिता की गंदी नाली में क्यों गिरती हो।"[64]

अपने ही घर परिवार में रहकर स्त्रियां संस्कृति का कितना पालन करती हैं? परंपराओं, मान्यताओं तथा पूर्वजों की धरोहरों को खंडित नहीं करती हैं। इस उपन्यास में परंपराओं का पालन कृष्णा की नानी करती हैं। डॉक्टर

की बीवी होने पर भी अपना समस्त कार्य स्वयं करती हैं जैसा कि इस उपन्यास में मिलता है। मां ने उनके बारे में बताया था कि-"नानी को अलबत्ता डॉक्टर की बीवी होना एकदम रास नही आता था। उसे लगता था कि हर आदमी उसके सर पर सवार घर को भ्रष्ट करने के कुचक्र में जुटा है ।उनके अपने खाने का समय तय नहीं था क्योंकि डॉक्टर साहब को कोई भी कभी भी बुला लेता था और पति परायण नानी पति के खाए बगैर कैसे मुंह में अन्न डाल सकती थी? देर- सवेर और हड़बड़ी में कुछ भी खा लेने के चलते वे लगातार पेट की तकलीफ झेलतीं। पर उन्होंने कभी भी एलोपैथिक दवाएँ नहीं खाईं। वे जड़ी-बूटियों और अपनी बनाई दवाई से ही अपना इलाज करती थीं। नानी की जिंदगी का मात्र यही इलाका ऐसा था जिस पर नाना का कोई वश न चलता था।"[65]

कृष्णा का परिवार शुरू से ही क्रांतिकारियों से तथा स्वराजियों से प्रभावित था। कृष्णा को शुरू से हिंदी भाषा के प्रति लगाव था, यह बात अलग है कि उसकी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से हुई। कृष्णा की मां पार्वती हिंदी भाषा को पसंद करती थी लेकिन अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाती थीं। हमारे समाज में आज भी यही स्थिति है। बड़े वर्ग के लोग यह समझते हैं कि इतने बड़े घर मे होने के बावजूद हम हिंदी क्यों पढ़ें? अंग्रेजी पढ़े, अंग्रेजी सीखें। दो शब्द अंग्रेजी बोलकर कुछ लोगों के बीच में अपने आपको गौरवान्वित महसूस करते हैं। पार्वती अंग्रेजी पत्रिकाएं भी पढ़ती थी लेकिन भाषाओं में खासकर हिंदी बड़ी उनको प्रिय थी। उसने बड़े गौरव के साथ अपने बच्चों को

बताया था कि कैसे वह बड़े आराम से पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त और प्रसाद की कविताएं धड़ाधड़ उद्धृत कर सकती थी? इतना ही नहीं स्कूल के काव्य पाठ तथा वाद-विवाद में सारे पुरस्कार झटक ले आती थी।

कृष्णा की मां पार्वती ने हिंदी भाषा, हिंदी मीडियम की पढ़ाई पर बात करते हुए कृष्णा को अंग्रेजी की शिक्षा पर जोर देने को कहा था उनका कहना था कि- हिंदी मीडियम में जो पढ़ाई होती है उसे आज भी किसी लड़की को ना दूल्हा मिल सकता है ना काम, लेकिन इसका असर कृष्णा के जीवन पर नहीं पड़ा। कृष्णा हिंदी ही पढ़ना चाहती थी। हिंदी पत्रकारिता का कितना महत्व है और स्त्रियां उसमें कितना सफल हो सकती हैं यह एक नवीन सवाल है? खुद पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने वाले यदि उस महत्व को स्पष्ट करतें हैं तो बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। अंग्रेजी के अखबारों, उनकी भाषा आदि का तब कितना महत्व था? हिंदी के पत्रकारों को हेय दृष्टि से देखा जाता था लेकिन कृष्णा का मानना था कि हम उसी क्षेत्र में मेहनत करेंगे, एक स्त्री होते भी अच्छा काम करेंगे। कृष्णा के चाचा जो एक पत्रकार थे वे भी हिंदी पत्रकार बनने से कृष्णा को मना करते थे उनका कहना था कि-"तुम अपना वक्त बर्बाद कर रही हो, "हिंदी पत्रकार हैं"। पर मैं उन घटिया अखबारों के लिए एक कौड़ी खर्च न् करूं और मैं उन्हें यह कहने का संतोष भी नहीं दे सकता कि मेरी सहमति से मेरी ही भतीजी उनकी बिरादरी में आ गयी है।"[66]

पत्रकारिता में नौकरी करते समय कृष्णा ने प्रिंट मीडिया का अचूक किस्सा बताया है और सचमुच ही भारतीय समाज की परंपरा, राजनीत की सच्चाई, सरकार की चापलूसी, हठधर्मिता एवं मानवता को शर्मसार करती

है। अपने मित्र पी.वी. के माध्यम से जो अनुभव कृष्णा ने व्यक्त किए वह पत्रकारिता क्षेत्र में जाने से ही पता चल सकता है। एक स्त्री होने के कारण कृष्णा को वहां तमाम समस्याएं जानने में वक्त तो लगा लेकिन जीवन के अनुभवों का जायजा बड़ा कारगर साबित हुआ कृष्णा के मित्र पी.वी. जो मीडिया सेल के भाषायी प्रवक्ता थे उनका कहना था कि- "कुछ अन्य लोगों के विपरीत उन्होंने इस बात की आलोचना नहीं की कि एशिया के अन्य लोकतांत्रिक देशों में उभर आए शासक परिवारों की तरह अपने यहां शासक दल को कंट्रोल करने वाले परिवार के लोग क्यों अपने बच्चों को अमेरिका और इंग्लैंड भेजकर पढ़ाते हैं जबकि खुद भी यहां नित नए कालेजों और विश्वविद्यालयों को मंजूरी देते हैं। एक कवि की तेज दृष्टि वाली बीवी ने जान लिया था कि इस शासक परिवार के बच्चे भले ही देशी भाषाओं को भूल जाएं, परिवार में और दोस्तों के बीच सिर्फ अंग्रेजी में ही बोले पर जब लोगों के पास जाने का अवसर आएगा तब उन्हें देसी जुबानों में ही काम करने- बोलने की मजबूरी होगी।"[67]

स्त्री जब नौकरी करती है तब उसे कितनी नसीहतें मिलतीं हैं उसे उस विभाग में मुख्य कार्यों से दूर रखा जाता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने के बाद कृष्णा ने जो सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक जीवन की सच्चाई को बताया है, आज भी समाज में खुले तौर पर हो रहा है। स्त्री को तटस्थ रहना चाहिए, हर कार्यों में भाग लेना चाहिए तभी वह सांसारिक अनुभवों को जान सकेगी। मृणाल पांडे का कहना है कि कृष्णा के मित्र पी.वी. ने महिला

चेतना की जो मुहिम दी वह इस प्रकार है- "अगर ज्यादा भली बनी रहोगी और अपने काम से मतलब रखोगी तो इस शहर में लोग तुम्हें कुचल कर आगे बढ़ जाएंगे।..... कृष्णा अपने अंदर धार पैदा करो, और सीधा वार करो। जहां जंगल का कानून चलता हो वहां जिंदा रहने का यही तरीका है।"[68]

मृणाल पाण्डे ने हिंदी और अंग्रेजी के संपादकों की स्थिति का संकेत दिया है। हिंदी के संपादकों को पैसे कम मिलते हैं जबकि वही अंग्रेजी के संपादकों को भरपूर पैसे और सुविधाएं मिलती थी। कुछ समय तक संपादकी कर लेने के बाद जब सम्पादक पैसे कमा लेते हैं तो फिर अपने परिवार को विदेश भेज देते हैं। पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंग जाते हैं, अंग्रेजी सीख कर अंग्रेज बन जाना चाहते हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में कितना भ्रष्टाचार है, मीडिया और सरकार दोनों एक दूसरे से बंधे हैं। पत्रकारिता और राजनीति दोनों केवल अपनी चाबी घुमाना चाहते हैं, जनता की परवाह किए बिना वे केवल अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठे रहना चाहते हैं। अंग्रेजी पत्रकारिता में काम करने वालों को आसानी से नौकरी मिल जाती थी, वहां पैसे भी थे और रोजगार भी था लेकिन हिंदी पत्रकारिता में कोई काम नहीं करना चाहता था। इस उपन्यास के पत्रों के प्रकाशन गृहों और प्रबंधकों की दयनीय स्थिति देखने को मिलती है, जो इस प्रकार है- "जब कृष्णा या उसके मित्र जे.पी जैसे लोगों के लिए संपादकी करने की बारी आई तब तक ये अधिकांश लोग उन झंखाड़ गाछों की तरह बन गए थे जो अपनी जमीन को छोड़ना तो नहीं चाहते थे, पर न फल रहे थे और न किसी को अपने नीचे पनपने दे रहे थे। उन्हें न तो अंग्रेजी अखबारों या पत्रिकाओं के संपादकों

से अपनी तुलना पसंद थी, न हीं वे उनके बराबर वेतन-भत्तों की मांग करते थे। यह समझदारी मानी जाती थी कि अगर हिंदी संपादक को भनक लग जाए कि मालिकान उन्हें दो पैसे का फायदा देने वाले हैं तब वे कभी भी हिंदी संपादकों के पूरे प्रबंधन के नजरिए पर सवाल नहीं उठाएंगे।"[69]

स्त्रियों को प्रकृति से कितना लगाव होता है। कृष्णा जब पहाड़ों पर जाती है तब बहुत प्रसन्न होती है पहाड़ी दृश्यों, वहां के फल, वहां की ताजी हवा तथा जीव-जंतुओं को देख कर मन खुश हो जाता है। पर्यटन की दृष्टि से संस्कृति से मनुष्य कितना जुड़ा हुआ है और स्त्रियों का कितना योगदान है? मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि-"उसने देखा है कि उसके शहर के फलदार पेड़ भी धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं और अधिकांश बागान पैसे वाले बिल्डरों को बेचे जा चुके हैं। ये लोग अटैचियों में पैसा भर कर मैदान से यहां आते हैं। एक समय के बाद वे इस सारी हरियाली और खूबसूरती को हटाकर उसकी जगह भद्दे टूरिस्ट लॉज बना देंगे और फिर अनेक राज्यों के विस्थापित शरणार्थी यहाँ आएंगे। वे अपनी कामचलाऊ दुकान लगाकर मुरादाबाद के पीतल की घटिया चीजें, लुधियाना में मशीन से बने कैशमिलन स्वेटर और शॉल उल्टी-सीधी कीमतों पर उन अमीर पर्यटकों को बेचेगे जो महगें लॉजों में रहेंगे और सिर्फ बिसलेरी का पानी ही पिएंगे। सारे प्राकृतिक झरने एक-एक करके सूखते जा रहे हैं। सम्भवतः प्रकृति पर्यटकों को अपने से दूर भगाने और ऐसी लोभी पीढ़ी से अपनी दूरी बनाए रखने के लिए अपना आखिरी हथियार इस्तेमाल कर रही हो।"[70]

इस संसार में मां-बेटी का रिश्ता कितना अटूट होता है। मां के लिए बेटियां कितना प्रिय होती हैं? सामाजिक भेदभाव के चलते बेटियां कितना जीवन और रोजगार के क्षेत्र में संघर्ष कर रहीं हैं। कृष्णा जब पत्रकारिता के में आती है तो उसे हमेशा मां की बातें याद आती हैं। माँ के बताए निर्देशों का पालन करते हुए वह जीवन जीना चाहती है। भारतीय समाज में स्त्री को जो स्थान मिला है वह उसी तर्ज पर परिवार को आगे ले जाने की कोशिश करती है। कृष्णा और उसकी मां पार्वती के रिश्ते को मृणाल जी ने इस प्रकार दिखाया है- "कृष्णा की मां को चूड़ियां बहुत पसंद थी लेकिन विधवा होने के चलते वह कांच की चूड़ियां नहीं पहन सकती इसलिए उसने प्लास्टिक और पक्की मिट्टी की चूड़ियों जैसी न जाने कई नई चीजें ढूढ़ ली थी। आज उसने काले रंग का जो मोटा बाला पहना था वह नग जड़ा था और टीवी की रोशनी पढ़ते ही वे खास ढंग से चमक जाते थे। टीवी- कैमरे स्वर्गीय नेता के चेहरे से अब उन रोते, बिलखते, चिल्लाते चेहरों की तरफ मुड़ रहे थे जो पूरे दिन और रात तक शव के दर्शनों के लिए आते रहे।"[71]

नायिका कृष्णा पत्रकारिता में कार्य करते समय केवल स्त्रियों के ऊपर लिखना या उनकी समस्याओं पर रिपोर्ट तैयार करना ज्यादा अच्छा समझती थी। स्त्रियों की समस्याओं को केंद्र बनाकर सरकार के सामने लाया करती थी, जिससे की राजनीति करने वाले यह लोग समझ सके कि अभी स्त्रियों की जीवन में क्या-क्या समस्याएं हैं ? कृष्णा गांव-शहर जाकर उनकी रिपोर्ट तैयार करती थी। आज के समय में रिपोर्टर कितना अखबारों में स्त्रियों की समस्याओं को उठाते हैं

तथा स्त्रियां यदि अपनी समस्याएं रखती भी हैं तो फिर कौन सुनता है? यह देखा जा सकता है। कृष्णा अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज के हर वर्ग की स्त्री को अधिकार दिलाना चाहती थी।

मृणाल पांडे ने कृष्णा के माध्यम से राजनीति पर तगड़ा व्यंग किया है। राजनीतिक लोगों के वायदे नारों तथा भाषणों के विचारों का जिक्र बड़े व्यंग्यपरक शैली में किया है। नेताओं के पास केवल अपनी समस्याएं हैं, स्त्रियों की समस्याओं पर मौन रहते हैं? योजनाओं को लागू करने को केवल दिलासा देते हैं। मृणाल पांडे कहती हैं कि- "कृष्णा ने पाया कि उनके भाषणों में पिछले चार दशकों की राजनीति के तौर-तरीकों को पूरी तरह नकारा जा रहा है, उसे भुला दिया जा रहा है। ऐसा लगता था कि नई बगावती जमात पुरानी हर चीज को उलट-पुलट तो रही है लेकिन खुद बिना किसी लक्ष्य, किसी तय रास्ते की यूं ही बढ़ती जा रही है। नए नेता कोई चीज लाने का वादा कर रहे थे और इतिहास के सहारे सब को नकार रहे थे। वे यह बात ही नहीं कर रहे थे कि किस तरह कानून का शासन कायम होगा, सड़कें- नालियां सार्वजनिक स्थलों की दुरावस्था दूर होगी, कैसे उनका राज्य खुशहाल होगा।" [72]

अपनी गवाही उपन्यास में बुंदेलखंड की संस्कृति एवं वहां की स्त्रियों की रिपोर्ट मिलती है। वहां की ग्रामीण स्त्रियों की समस्या, अपने बेटियों-औरतों के दुख दर्द को वहां के लोग किस तरह व्यक्त करते हैं । उनके पास दहेज और धन की समस्याएं हैं इसलिए पहाड़ी अंचल में जीवन व्यतीत करने वाले लोग जो गरीब और असहाय हैं वह दो वक्त की रोटी की

व्यवस्था कैसे करें? लड़की की शादी और शिक्षा की व्यवस्था कैसे करें? भारत की आजादी के कई वर्ष पूरा होने के बाद भी पत्रकारिता के अनुभव को मृणाल पांडे ने अपनी पत्रकारिता की अंदाज में बड़े सरल तरीके से पेश किया है। पत्रकारिता क्षेत्र की सच्चाई मालूम होने पर शायद ही वहां कोई नौकरी कर सकेगा। कृष्णा की पत्रकारिता के दौरान महिलाओं से संबंधित कई विषय सामने आते हैं जिसमें महिला अधिकार, सेक्स की आजादी, समलैंगिकता, बाल विवाह आदि कार्यक्रम टीवी पर प्रसारित होते थे तब महिलाएं बड़े प्रेम से उसके (कृष्णा) के कार्यक्रम को देखती थी और अपने अधिकारों के बारे में जानकारियाँ ग्रहण करती थीं। पत्रकारिता, टीवी चैनल आज भी स्त्रियों के लिए ज्ञान का केंद्र हैं दूरदर्शन को देख कर आज भी महिलाएं जीवन के बारे में बहुत कुछ सीख रही हैं उन्हें बिना बताए बहुत सी चीजें मालूम हो जाती हैं।

मृणाल पांडे ने 1994 में मनीला में आयोजित स्त्रियों की सौंदर्य प्रतियोगिता का चित्रण इस उपन्यास में किया है, कि अपने सौंदर्य को प्रदर्शित करने के लिए स्त्रियां कितना पश्चिमी सभ्यता को ग्रहण कर रही हैं। आज भी आए दिनों स्त्रियों को मिस यूनिवर्स, मिस इंडिया का खिताब मिलता है। रूप सौंदर्य में स्त्रियां अपने आप को व्यक्त कर स्त्री को सभी खतरों से बाहर करती नजर आ रही हैं। स्त्रियां स्वच्छंद होना चाहती हैं, बिना रोक-टोक के जीवन के हर क्षेत्र में, प्रत्येक प्रतियोगिता में अपनी भागीदारी को बढ़ा रही हैं। उपन्यास के इस अंश से स्त्रियों के चेतना का हवाला मिलता है जो इस प्रकार है- "एक प्रमुख अखबार समूह

ने जो देश में सौंदर्य प्रतियोगिताओं से काफी समय से जुड़ा रहा है, उस लड़की की शारीरिक बनावट से जुड़े सारे आंकड़े भी प्रकाशित किए थे, उसकी हाबियों का जिक्र किया था, (जिसमें मदर टेरेसा के काम में मदद करने की एक असंभव इच्छा भी शामिल थी) और भारत के प्रति उसके अनन्य प्रेम का हवाला भी दिया था..... औरत का मतलब पुरुष को प्रेम और स्नेह (केयर) का असली अर्थ बताना ही है।"[73]

मृणाल पांडे ने स्त्रियों की वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डाला है। आज के समय में स्त्रियों के जीवन में शादी को लेकर क्या क्या सोचना पड़ता है? रिश्तों की अहमियत आज हमारे समाज में लोग समझते तो हैं, पर तलाक- मनमुटाव बड़ी जल्दी हो जाते हैं। लोग अपनी परंपरा को छोड़ते जा रहे हैं। भागमभाग की जिंदगी में मानवता की पहचान खो रहे हैं। मां-बाप, भाई, पति-पत्नी के रिश्ते आज भी युवा पीढ़ी के लिए तथा फैशन वाले समाज की दृष्टि में महत्वपूर्ण है कि नहीं? ऐसे कई सवाल स्त्रियों को सोचने पर मजबूर करते हैं। मृणाल पांडे कहतीं हैं कि- "तुम लड़कियां शादी को ज्यादा गंभीरता से ले लेती हो। इससे जुड़ी बेवकूफियों पर ठहाके लगाना भी सीखो। पर एक बार जब विवाह या प्रेम में दगाबाजी की कहानी शुरू होती थी तो ठहरने का नाम ही नहीं लेती। क्या ऐसे झगड़े और टूटन इतने आम है?"[74]

आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास स्त्री की गरिमा तथा बीते दिनों की याद दिलाते हैं। मृणाल जी के जीवन की यादें इस

उपन्यास में फिर से ताजा हुई है। समाज सेवा, नौकरी और पत्रकारिता के हर क्षेत्रों में स्त्री अपने अनुभव को लेकर अंत में फिर अपने परिवार में सीमित हो जाती है। कृष्णा भी अंत में अपनी नौकरी छोड़ देती है और अपनी मां की बीमारी को लेकर परेशान रहती है। मां के लिए फिर हमेशा- हमेशा समर्पित हो जाती है। हमारे घर-परिवार में यही संस्कार सिखाए जाते हैं कि मां-बाप की सेवा सर्वोच्च है। एक स्त्री उसे केवल रिश्ते के नजरिए से नहीं देखती बल्कि सामाजिक मूल्य एवं मानवता के कारण मानव को देव तुल्य समझने लगती है।

मृणाल पांडे की भाषा स्त्रियों के घर- परिवार की तरह बोलचाल की भाषा है। स्त्री चेतना, स्त्री वेदना, के मर्मों में गुथी भाषा मानव मूल्यों को प्रकट करती है। पत्रकारिता के अनुभव से स्त्री की पहचान एवं अधिकारों का पहचाना गया नया दस्तावेज है, जहां नारी का बदलता स्वरूप, उसका आत्मविश्वास एवं एक विद्रोह है। अपनी अस्मिता की पहचान करती अद्भुत तेवर, नारी के ये तमाम नवीन रूप मृणाल पांडे के कथा साहित्य में सहज ही दिखाई देते हैं।

'सहेला रे ' उपन्यास में स्त्री-विमर्श -

'सहेला रे' उपन्यास मृणाल पाण्डे द्वारा रचित सांगीतिक परंपरा को सूचित करता है। यह पत्रात्मक प्रविधि में लिखा गया बायोपिक उपन्यास है। इसकी कथा पहाड़ की बेटी हीराबाई और अंग्रेज पिता से जन्मी उनकी बेटी अंजलीबाई को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यह दोनों ही गायिका अपने समय की बड़ी मशहूर गानेवालियां थी। यह उपन्यास संगीत की उस धारा का वर्णन करता है जब संगीत

के साधक हुआ करते थे। वे अपने लिए गाते थे और उनके सुनने वाले उनके स्वरों को प्रसाद की तरह ग्रहण करते थे।

संगीत की साधिका यह महिलाएं जीवन को ही संगीत के मनमोहक पहलुओं से तालमेल बिठाकर अपनी स्व-साधना के द्वारा जीवन के कष्टों को कम करती थी। अकेलेपन को दूर करके, अपनी ही दुनिया में मस्त रहने तथा स्त्री जीवन की कठिनाइयों को जीवन के भुलाने वाले दर्दों के साथ जोड़कर यह बताने का प्रयास किया कि स्त्री अपने ही स्वर में दर्द की कितनी लड़ियाँ गूँथ सकती है। पुरुष संगीत साधकों को टक्कर देने की क्षमताएं स्त्रियों के अंदर थी। स्त्री संगीत की पुरानी परंपरा को ही नहीं बल्कि संगीत की उस नई परंपरा में एक नया इतिहास गढ़ने के उपक्रम से इस क्षेत्र में अपना स्थान निश्चित किया। हमारी संगीत साधिकाओं ने कला की उस बारीकी को प्रकट किया जिसे सुनकर किसका मन वाह-वाह नहीं करता? महिला संगीतकारों ने स्त्री मन की कड़वाहट को संगीत के माध्यम से व्यक्त किया। अपने जीवन के दर्दों को संगीत का माध्यम बनाकर जब तान छेड़ा। सुरों की साधिका ये स्त्रियां जग प्रसिद्ध तो हुई ही, साथ ही साथ साहित्य में भी अपना नाम रोशन कर गई।

स्त्रियों के किस्सों को धुनों में पिरोने की यह धारा आज भी चली आ रही है। आज भी इन धुनों, ध्वनियों को सुनने का किसको मन नहीं करता? दुनिया का ऐसा कौन सा प्राणी है जिसका मन संगीत से नहीं झूमता? स्त्री ने अपनी क्षमता के सहारे पुरुष से आगे निकलने का जो इतिहास रचा उसके संबंध में डॉक्टर करुणा उमरे का कथन है कि-"स्त्री का मनोविज्ञान

सबल और ठोस धरातल पर आधारित होता है ।उन्हें मालूम था कि पुरुष के लिए बंधनमुक्त प्रतिमान स्वच्छंदता व स्वतंत्रता की चरम सीमाओं का स्पर्श नहीं कर सकते और उनकी निर्मित सीमित हो यह उन्हें स्वीकृत नहीं ।अतः उनके चरम विकास में वे बाधक नहीं बनना चाहती। परंतु पुरुष ने न तो स्त्री का सृजन किया न ही उनका निर्माण। अपने आप को ऊंचा सिद्ध करने में स्त्री को गौण किया। अतः उसे स्त्री को स्वसमान देखने की दृष्टि ही नहीं मिली।"[75]

आज भी मीडिया में, न्यूज़ चैनलों पर तमाम गायिकाओं की प्रस्तुति दिखाई जाती है। उनकी गायन प्रतिभा को उच्चतम बनाने पर तवज्जो दिया जाता है। ये गायिकाएं संगीत की उस परंपरा को जीवित रखना चाहती हैं जो उन्हें शताब्दियों से मिली है। इस तरीके से संगीत की दुनिया का मूल्यांकन करते हुए मृणाल पांडे कहतीं हैं कि- "महिला सशक्तिकरण के युग में मीडिया और महिलाएं संगीत और महिलाएं सरीखे मुद्दे दुगुने जोर-शोर के साथ भारी बिकाऊ सरकारी जिनिस बन बैठे हैं। तुम भी देखते ही होगे किस तरह हिंदुस्तानी संगीत की पारंपरिक गायिकाओं को बेवजह कई तरह की मध्यवर्गीय नारीवादी निष्ठा से जोड़कर सेमिनारों की फंडिंग लूटी जा रही है ।और हमारे यहां कोई भी बौद्धिक जुगाली महिला से जुड़ी नहीं कि तमाम तरह की कुंठाओं के तेजाबी गटर खुलने लगते हैं। खासकर तब जब मामला पेशेवर तवायफों की महफिलों से भी जुड़ सकता हो।"[76]

इस उपन्यास में लेखिका ने कई गायिकाओं के जीवन वृतांत को लेकर स्वर साधिकाओं के संगीत के क्षेत्र में योगदान को उद्धृत किया है। जो स्त्री गायिका आज नहीं है लेकिन उनके संगीत बजते हैं तो हमें उन पुराने दिनों की याद दिलाते हैं जैसे- लेखिका ने जोहरा बेगम की गायकी के प्रसंग को उपन्यास के प्रारंभ में ही बताया है। उसकी मां श्यामा बड़े घर की मनचली बेटी थी जिसको उस मुसलमान उस्ताद भगा ले गया था, उसके बाद तो फिर जोहराबाई से जोहरा बेगम बन गई। इसी तरह गायिकाओं के माध्यम से तवायफों के जीवन का दर्द बयां किया गया है। बहुत ऐसी तवायफें थीं, जो कला और संगीत में पारंगत थी लेकिन समाज ने उन्हें कैसी नजरों से देखा इन मसलों पर कौन अमल करें? बस यही कह दी जाती थीं कि ये नाचने- गाने वाली हैं। इनका संसार बस यहीं तक सीमित है, लेकिन इन स्त्रियों ने संगीत से समाज को एक नई दिशा भी दी। स्त्री का सामाजिक मूल्य इन क्षेत्रों में बढ़ता ही रहा है कभी घटा नहीं, वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी। घर परिवार लोक-लाज तथा अपनी समस्याओं को एक और रखकर स्त्री अस्मिता की पहचान बनाना चाहती थी। लेखिका ने बनारस की मशहूर गायिका हीराबाई और उनकी बेटी अंजली बाई का रहस्यमय इतिहास प्रस्तुत किया है। इनकी जानकारियां संगीत के क्षेत्र में काम करने वाली औरतों के लिए दिशानिर्देश ही है। मृणाल पांडे का कहना है कि जितना भी सुना है वो टुकड़ा- टुकड़ा उड़ती- सी अफवाहों में सुना है। ओ मां बेटी हीराबाई और अंजलि बाई अपने वक्त की भारी गायिकाए ही नहीं बेहद शातिर महफिली

शख्सियते और करोड़ों की हैसियत रखने वाली सेल्फमेड रईस भी थी। आज की भाषा में कहें तो नॉट जस्ट ग्रेट सिंगर्स बट आलसो वेरी मार्केट सैवी परफौर्मर्स।"[77]

छोटी जाति की औरतों का जिक्र लेखिका ने संगीत साधिका के दौरान किया है। पहाड़ों में रहने वाली या गांव में रहने वाली तमाम ऐसे औरतें थी जिनको समाज में ज्यादा सम्मान तो नहीं मिला लेकिन अपने कला के बल पर उन्होंने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित जरूर किया। संगीत की स्वर लहरी को सुनकर बड़े-बड़े रईस उन पर पैसे लुटाते थे। स्त्री जीवन में मिले दर्दों को सहा, जब आवश्यकता हुई तो अपनी स्वरागिनी से अपने दर्दों को व्यक्त किया। उत्तराखंड की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का वर्णन करते हुए लेखिका ने एक 'प्रतिमा देवी' नामक स्त्री का जिक्र किया है लेखिका कहती है कि-"इस प्रतिमा देवी को जब मैंने सुना वह गुलाब नामक नर्तकी गायिका की तरफ से अपनी जाति की भूमिहीनता का दुख बयान करती हुई ढोलक की थाप पर फिरकिनी लेती हुई देवाधिदेव महादेव को मायके की किसी रूठी बेटी की तरह कोस रही थी। 'हे महादेव तुम पर हम वादियों का सराप पड़े। क्यों तुमने हमको धरती का हिस्सा नहीं दिया? तुम्हारी ही आज्ञा से रस्सी से भयंकर पहाड़ी ढालों पर फिसलते हुए भी हमारी पीठ हर तरह की चोट को क्यों खुली रहती है।"[78]

महिला संगीतकार अंजली बाई को विशेष रूप से केंद्र में रखकर उनके जीवन को सराहा है। स्त्री अपनी जीवन के मनोभावों को जब ब्यक्त करती है, अपने जिंदगी का सच सबके सामने रखती है तब स्त्री के इतिहास का पन्ना खुलता है। अंजलीबाई का जिक्र करते हुए मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि-

"अंजलीबाई शाहाना तबीयत की गायिका थी और अंत तक रही। लाखों कमाए और लुटाए। जेवरात की और संपत्ति की उनमें गहरी प्यास रही। शायद मजलूम बचपन इसकी वजह हो। बहर हाल बाई जल्द ही कोलकाता में तमाम भव्य बिल्डिंगों की मालकिन बनी, कोई चितपुर रोड पर, तो कोई नखोदा मस्जिद के बगल में। बाद को जब बाई के आशिकों और एक तथाकथित बेटे ने प्रॉपर्टी को लेकर उनसे मुकदमेंबाजी का खर्चीला सिलसिला शुरू कर दिया तो वकीलों ने उनको शार्कर्क की तरह घेरना शुरू किया। मुकदमा जीती, लेकिन रफ्ता- रफ्ता सब ठाठ जाता रहा। वकीलों के कुछ कागजात मैंने पाए थे शो भेज दूंगा। खुद अपने बूते लक्ष्मी को साधने वाली, मर्द आशिकों को भर हाथ खर्च से खरीदने वाली एक विलक्षण महिला की अजीबोगरीब कहानी उन कागजों में टुकड़ा टुकड़ा पैवस्त है।"[79]

मृणाल पांडे के अनुसार-"मूलतः इस उपन्यास का सारतत्व यह है कि पहाड़ पर अंग्रेज बाप से जन्मी अंजलीबाई और उसकी माँ हीरा दोनों अपने वक्तों की बड़ी और मशहूर गानेवालीयां। न सिर्फ गानेवालियां बल्कि खूबसूरती और सभ्याचार में अपनी मिसाल पहाड़ की बेटी हीरा एक अंग्रेज अफसर एडवर्ड के. हिवेट की नजर को भाई तो उसने उस समय के अंग्रेज अफसरों की अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए उसे अपने घर बिठा लिया और एक बेटी को जन्म दिया, नाम रखा विक्टोरिया मसीह। हिवेट की लाश एक दिन जंगलों में पाई गई और नाज- नखरों में पल रही विक्टोरिया अनाथ हो गई। शरण मिली बनारस में जो संगीत का और संगीत के पारखियों का गढ़ था।"[80]

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. गीते निहार -स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों में यथार्थ के विभिन्न रूप, पृष्ठ 113
2. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध, उपन्यास, (2013),राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ,पृष्ठ सं 9
3. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध, उपन्यास, (2013),राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली ,पृष्ठ सं 127
4. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 36
5. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्णप्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 13
6. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 14
7. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 17
8. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 34
9. पाण्डे मृणाल - विरुद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 54
10. पाण्डे मृणाल - विरूद्ध उपन्यास, (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 121

11. रानी पूनम -मैत्रीयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी दशा और दिशा, (2013), उद्योग प्रकाशन गाजियाबाद,पृष्ठ 69
12. उमरे करुणा - स्त्री विमर्श साहित्यिक और व्यावहारिक संदर्भ, (2009), अमन प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ 143
13. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 8
14. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 13
15. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 19
16. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 23
17. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 53
18. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 83
19. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 107
20. पाण्डे मृणाल - सम्पूर्ण कहानियाँ, (गौरापंत शिवानी) (2013), राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं 189

21. पाण्डे मृणाल - पटरंगपुर पुराण उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 137
22. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 10
23. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 14
24. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 15
25. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 17
26. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 21
27. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 27
28. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 40
29. डॉ वर्मा मृदुला - प्रथम दशक के महिला लेखन में स्त्री- विमर्श, (2012), विद्या प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ सं 51
30. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 41

31. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 52
32. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 68
33. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 124
34. परमार दीपिका-आँवा उपन्यास में नारी चित्रण एवं समस्याएं, (2018), चिंतन प्रकाशन कानपुर,पृष्ठ सं 92
35. परमार दीपिका -आँवा उपन्यास में नारी चित्रण एवं समस्याएं,(2018), चिंतन प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ सं 37
36. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 125
37. पाण्डे मृणाल - देवी उपन्यास, (2014), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 164
38. पाण्डे मृणाल- रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं12
39. नवले संजय - वंचितों के प्रवक्ता शिवमूर्ति, (2019), अमन प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ सं 229
40. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं5

41. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं50
42. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं16
43. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं26
44. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं27
45. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं30
46. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास, (2010), राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं32
47. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं34
48. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं34
49. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं60
50. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं61

51. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं102
52. पाण्डे मृणाल -रास्तों पर भटकते हुए उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं105
53. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 20
54. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 46
55. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 93
56. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 90
57. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 90
58. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 70
59. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 75
60. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 22

61. पाण्डे मृणाल -हमका दियो परदेश उपन्यास,(2011),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, (पुस्तक के कवर पृष्ठ से)
62. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं (पुस्तक के कवर पृष्ठ से)
63. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 19
64. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 22
65. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 16
66. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 23
67. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 27
68. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 28
69. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 48
70. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 58

71. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 59
72. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 87
73. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 136
74. पाण्डे मृणाल -अपनी गवाही उपन्यास,(2010),राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 160
75. डॉ उमरे करुणा-स्त्री-विमर्श साहित्यिक और व्यावहारिक संदर्भ ,(2009),अमन प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ सं 79
76. पाण्डे मृणाल -सहेला रे उपन्यास ,(2017) ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 13
77. पाण्डे मृणाल -सहेला रे उपन्यास ,(2017) ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 37
78. पाण्डे मृणाल -सहेला रे उपन्यास ,(2017) ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 68
79. पाण्डे मृणाल -सहेला रे उपन्यास ,(2017) ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं 154
80. पाण्डे मृणाल -सहेला रे उपन्यास ,(2017) ,राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं (पुस्तक के कवर पृष्ठ से उदधृत)।